Municipal Library,
NAINI TAL.

Class No. 891.3
P834
Book No. 120

श्री प्रभात किरण

हिन्दू मारशल-लॉ

याने

बहूरानी की चिता

हिन्दूसमाज में चलते हुये भयंकर फौजी कानून की रोमांच
कारी, हृदय विदारक सच्ची कहानियाँ सुनानेवाला
एक महान क्रांतिकारी उपन्यास रत्न।

सिर्फ दो रुपये में ८०० पृष्ठ
एक साल में देनेवाली
महान क्रांतिकारी
दो आनामाला
मासिक सिरीज़
के ग्राहक
बनिये !

वार्षिक मूल्य

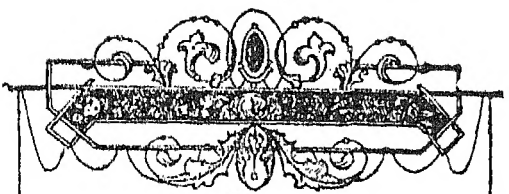

भूमिका

"हिन्दू मारशल्—लॉ" शब्द बड़ा अटपटा, पर मतलब बहुत सीधा है। "मारशल्—लॉ" याने फौजी कानून—बागियों को दबाने की मशीनगन!

तब क्या हिन्दू-समाज में कोई भीषण बग़ावत खड़ी हुई है?

हाँ—वह बग़ावत संसार की निगाह में एक "अद्भुत मज़ाक" पर, बड़ी बड़ी तोंदवाले हिन्दू समाज के प्रमुख सिपहसालारों के छक्के छुड़ादेने वाली समझिये!

संसार के सभी बाग़ी भयंकर होते हैं, पर फिर भी मौत से डरते हैं—किन्तु, हिन्दू-समाज के हसीन पर बहादुर बाग़ी, मौत से भी प्यार करते हैं! संसार में बाग़ी पुरुष होते हैं, पर हिन्दू समाज में स्त्रियाँ!

संसार ने विद्रोहियों पर शासन करने के लिये इस काले कानून को बनाया—पर हिन्दू-समाज ने अबलाओं पर शासन करने के लिये ! मारशल्-लॉ अस्थाई समय के लिये होता है, पर "हिन्दू मारशल्-लॉ" हमेशा के लिये !!

इस पुस्तक में आप देखेंगे—हिन्दू-समाज के अमानुषिक अत्याचार—भोली भाली अबोला बहुरानियों पर ढ़ायेजाने वाले सास के सितमें—अपने पैर की जूती समझने वाले हृदयहीन निर्दयी पति की रोमांचकारी काली करतूतें ! आपका हृदय सिहर उठेगा—आँखों से अश्रुधारायें बहेंगी-आप कह उठेंगे—"हां सचमुच—यह हिन्दू मारशल्-लॉ है !!! "

"प्रभात किरण"

बहूरानी 'चंद्रिका'

हिन्दू समाज का एक फूलता-फलता गुलाब—जिसे हृदयहीन समाज ने अपने फौज़ी क़ानून की चक्की मे पीस डाला

१

प्यारे प्रियतम !

आप कहा करते थे—"चंद्रिका" तू बड़ी नटखट है—चंचल है—चुलबुली है ! पर, यह क्या, यहां तो घर भरही मुझे "सूम-गूंगी-पगली" आदि शब्दों से लज्जित करता है !

अभी आठही दिन जो मुझे आपसे बिछुड़े हुये—पर यह बड़े बड़े दिन और हिमालय—सी विशाल रातें, कितनी मुसीबत से मेरी कटी हैं—यह मैंही जानती हूँ ! रह रह कर मुझे आपका वह वाक्य याद आता है—जो जुदाई की आखरी रात में आपने कहा था—"चंद्रिका इस शीत काल में तुम्हें कैसा पीहर भाया है !" पर क्या करूं हृदय पर पत्थर रखकर मैं आपसे विदा हुई थी !

पिताजी की शोचनीय अवस्था की खबर पाकर मैं दिल के लाख मना करते हुये भी अपने को नहीं रोक सकी ! वास्तव में पिताजी अब भी सख्त बीमार हैं। इस भयंकर स्थिती में, पित्र-सेवा से वंचित रहना भी दुर्भाग्य होता !

पीहर से मुझे लेने आये हुए आदमी को देखकर सास साहिबा कितनी बिगड़ी थीं—पर प्रियतम ! आपही के प्रयत्न शील साहस से पित्र सेवा का यह अंतिम सोभाग्य मुझे मिल सका !

विदा होते समय जब सास साहिबा के मैं पाँय लगी थी—उम्मीद थी, कोई आशीर्वाद मिलेगा—पर उनका क्रोध उस समय भी शाँत नहीं हो सका था ! कितने क्रूर शब्दों में मुझे पाँव से ढ़केलते हुये उन्होंने कहा था—"मेरी आज्ञा को ठुकराने वाली बहू ! जा अब पीहर ही में पड़ी रहना !"

इस वाक्य को सुनकर मेरा कलेजा कांप उठाथा। दिलमें विचार हुवा था—सास को नाराज़ करके नहीं जानाही अच्छा होगा—पर आपने उसी समय मुझे जल्दी से नीचे उतर जाने

का इशारा किया ! मैं नीचे उतर गई--जाते समय मैंने देखा सास साहिबा क्रोध की भयंकर प्रतिमूर्ति बनी हुई थी !

जब कभी मुझे सास साहिबा के क्रोध का स्मरण हो आता है--भय से मैं काँप उठती हूँ--आँखों के आगे अंधेरी-सी छा जाती है !

मैं इसी वहम से मरी जा रही हूँ--"सास साहिबा ने जो कहा था कहीं, वही करके न दिखावें !"

प्यारे प्रियतम ! मुझे एक माह बादही आपने बुलाने का वादा किया--पर अभी तो सिर्फ आठही दिन बीते हैं--ये बाईस दिन किस तरह काटूँगी !

इस समय रात्रिके दो बजे होंगे--पर आँखों में नींद का पता नहीं ! शानदार सजे हुये कमरे में मखमली गदीला एक बढ़िया झूलेदार पलंग पर बिछा हुवा है--उसपर मैं बैठी हुई हूँ। पर यह क्या बजाये फर्श के इसपर मेरी बेचैनी सौगुनी बढ़ चली !

मैंने उठकर खिड़की खोली---बाहर झाँका तो मुँह सरदी से बर्फ़ बन गया। शाँय-शाँय--करती हुई घोर अँधियारी रात्रि में--कोहरा--बड़ी तेजी से बरस रहा था--सारा मोहल्ला कोहरे से ढका हुवा था !

इसी समय हृदयेश्वर ! आपकी याद ने मुझे बेचैन कर दिया। आपका वह वाक्य--"चंद्रिका--इस शीतकाल में तुम्हें कैसा पीहर भाया"--पुनः याद हो आया !

फिर याद आई, वे आनंददायिनी मुलाकातें--आपका

कभी किसी कारणवश देर से आना—और मेरा मुँह फुलाकर बैठ रहना। आप कमीज़ उतारकर मेरे पास आते और कहते-'चंद्रिका' क्या आज तुम इतनी रूठ गई हो, कि, हमारा कमीज़ तक उठाकर खूँटी पर नहीं टाँक सकती ? तब मैं पूर्ववत मुँह फुलाकर कहती—"आपको किसी पर दया नहीं है—चाहे कोई भलेही किसी के इन्तज़ार में तड़पा करे!" तब आप खिल खिलाकर हँस पड़ते और मुझे अपने बाहुपाश में स्थान देते! कैसी अच्छी वे आनंद की रातें थीं—प्रियतम !

एक दिन आप कह गये-थे—"चंद्रिका—हम जब घर पर आवें—तू सजकर—मयंक-मोहिनी बनकर—दोनों हाथों में चांदी की सुराही लिये खड़ी मिलना ! याद रखो, यदि खड़ी न मिलोगी तो मैं जलही न पीऊंगा !

आपने ठीक नौ बजे आने का वादा किया था—किन्तु मैं आठही बजे से सुराही लिये खड़ी होकर आपकी राह देखने लगी ! सास साहिबा अपने भाई के घर गई थीं—इस लिये मैं कमरे के मध्य फाटक में खूब सजकर—पूरी आज़ादी से खड़ी थी ! किन्तु, ठीक समय पर आप नहीं पधारे, रात के ग्यारह बजे तक मैं आपके इंतजार में खड़ी रही; पर आप नहीं पधारे ! मेरी अँगुलियाँ अकड़कर निर्जीव हो चुकी थीं —थकावट से—पाँव फिसलने लग गये थे—आँखें रो रो कर अंधी हो चुकी थीं—तब आप बारह बजे पधारे ! यदि दो चार मिनट आप और नहीं आते, तो मूर्छित होकर मैं ज़मीन पर गिर पड़ती !

मेरी इस हालत को देखकर आपको कितना पश्चाताप हुआ था, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है। मुझे आपने आते ही सुराही छीनकर गोद में उठा लिया था! मेरे मना करते हुये भी आप अपनी भूल की क्षमा माँग उठे थे! उस दिन आपने कहा था--"चंद्रिका! तू सावित्री से कम नहीं है"। यह सब कुछ हुआ किन्तु, मेरे लाख हाथ पाँव पटकते हुये भी जब आप बोतल से बढ़िया चमेली का तेल निकालकर, मेरी कलाइयाँ और हाथों पर जबरन मलने लगे थे—तब तो मैं शर्म से मर गई थी! पर क्या करूँ आपके बलिष्ठ बाहुपाश से निकलने की ताक़त भी तो मुझ में नहीं थी!

"मुझे कोई दर्द नहीं है—मैं भली चंगी हूँ—मानो प्रियतम —इस तरह मुझे लज्जित न करो—यह सेवा लेकर किस जन्म में इस ऋण से मैं उऋण होऊँगी! हाथ जोड़ती हूँ—क्षमा चाहती हूँ—मुझे छोड़ दो!!—" कहते हुये मैंने आपके चरणों में मस्तक रख दिया था तब आपने मुसकरा कर—मुझे और भी लज्जित करने के इरादे से व्यंगपूर्वक कहा था:—हम जानते हैं आप बड़ी सुकुमार हैं—हमारे कठोर हाथों से आपकी कमनीय कलाइयाँ छिल रही हैं—किंतु, हमारे आनंद के खातिर क्या इतना-सा कष्ट भी तुम नहीं सह सकती प्रिये? तुम कितनी मीठी हो यह आजही हमें मालूम हुआ है!

प्रियतम! वे कैसी सुखदायिनी गुलकातें थीं! जिस पिता ने मुझे पाल पोषकर इतनी बड़ी की—सिर्फ तीन ही साल में मैं कैसी कृतघ्न होगई! बापका घर आपके बिना मुझे खाने

दौड़ता है !!

आप पत्र द्वारा अपनी प्रसन्नता के समाचार शीघ्र भेजियेगा ! यदि ईश्वर ने चाहा तो पिताजी शीघ्रही स्वस्थ हो जावेंगे ! फिर तो मैं आपके चरणों के अवश्य ही दर्शन कर सकूँगी ! आपके पत्र की राह चंद्र-चकोर की तरह देख रही हूँ-उत्तर शीघ्र दीजियेगा !

आपके पादाम्बुजों की दासी
"चन्द्रिका"

पत्र पढ़कर हृदय में प्रिया मिलन-सा आनंद हुआ ! अपनी नवविवाहिता विरहिनी प्रणयिनी के, प्रथम पीहर गमन की हृदय विकसित प्रेम प्रस्फुटित सरस कलियों का रसास्वादन कर "चंद्रकान्त बाबू" का हृदय-मंदिर पत्नी-प्रेम से गद् गद् हो उठा !

जो हाल उधर प्रिया का था, वही-इधर प्रियतम का हुआ ! पत्र को कई बार पढ़ा—पर पढ़ने की नवीनता कम नहीं हुई ! पत्र पर एक दो जगह स्याही फैली देखकर—प्रियतम के दिल में कल्पना हुई—"यह चंद्रिका के प्रेमाश्रु होंगे !" आह—वह कितनी भोली थी—मुझे जरासा रूठा देखकर—वह रो दिया करती थी—मेरे कदमों में आन गिरती थी। अपने कमनीय हाथों से आँसू बहाते हुये उसका माफी मांगना—मेरी रूठाई की रामबाण औषधि थी !

"चंद्रिका" ! मैं तुम्हारे वियोग में पहले ही पागल था—फिर तुमने यह दुतरफी अग्नि शिखा क्यों भड़काई ! मैं सोचता

था, तुम्हारे जाने से मेरे स्वार्थ में कमी हुई—महज़ इसीलिये तुम मुझे याद आती हो—किंतु, नहीं, यह मेरी भूल थी! मुझे आज मालूम हुवा वह स्वार्थ नहीं, पर सच्चे पवित्र प्रेम का आकर्षण था—जिसने हमारी हृदय तंत्रियाँ एकही सूत्र में गूँथ दी थीं।

तुम पत्र का उत्तर चाहती हो—पर मैं क्या लिखूँ। तुम खुद को पराधीन समझती हो—पर मैं कहीं तुम से अधिक पराधीन हूँ।

इसी समय पत्र लिखने के लिये चंद्रकांत बाबू ने कलम उठाई—सोचने लगे—आखिर उसके हृदय को शान्ति पहुँचाने के लिये क्या लिखूँ!

"पगली चंद्रिका!"

पत्र पर सिर्फ दो ही शब्द लिखे थे कि—कमरे में माँ ने प्रवेश करते हुये पूछा:—"क्या लिख रहा है चंदू!"

"कुछ नहीं माँ"—कागज को एक तरफ रखते हुये चंद्रकांत बाबू कमरे के बाहर हो गये!

२

चंद्रकांत बाबू-एक होनहार युवक निकले ! तीन साल तक वकालत करके वे काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। उनकी लोकप्रियता दिन दिन बढ़ने लगी ! अदालत में आपकी काफी इज्ज़त थी ! यहाँ तक कि स्वयं चीफ़ जस्टिस साहब भी आपकी बहुत इज्ज़त करते थे।

अकस्मात एक मॅजिस्ट्रेट की जगह खाली हुई और वह जस्टिस साहब की मेहरबानी से चंद्रकांत बाबू को मिल गई। अपनी न्यायप्रियता से थोड़े ही समय में वे एक उच्च कोटि के न्यायाधीश समझे जाने लगे! वादी और प्रतिवादी दोनोंही पक्ष आपके न्याय से प्रसन्न होते थे।

चंद्रकांत बाबू मॅजिस्ट्रेट थे—पर उनके सर पर न टोप था न पांव में बूट, न पेण्ट था—न पतलून! वे एक साधारण गृहस्थी के सात्विक लिबास में रहते थे।

इन्हीं दिनों आपकी जीवन सहचरी पीहर में थीं। एक एक दिन गिन कर चंद्रकांत बाबू काटने लगे! इसबार कई दिनों के इंतज़ार के बाद भी पत्र नहीं मिला था—इसी मानसिक चिंता में चद्रकांत बाबू उदास रहते थे। उन्हें भांति भाँति के खयाल आते थे। क्या "चंद्रिका" मुझसे रूठगई है—अथवा मेरे रूखे पत्र ने उस हेमांगी के कोमल दिल में चोट पहुंचाई? कहीं वह बीमार तो नहीं हो गई? क्या बात है! हे ईश्वर! मेरी जीवन-वाटिका पर कोई आफ़त तो नहीं आई!"

इसीतरह की मानसिक चिंताओं से परेशान हृदय, मॅजिस्ट्रेट साहब शाम को आठ बजे कुछ से घर को आरहे थे कि, उन्हें एक तार मिला! "उसमें श्वसुर साहब के स्वर्गवास के शोक समाचार थे!" तार लेकर चंद्रकांत बाबू शीघ्रता से इक्केद्वारा घर को रवाना हुये।

दिलमें खयाल आया--बहुत बुरा हुवा। आज ससुराल

में कोहराम-सा मच रहा होगा ! पिता की मृत्यु का दुःख कैसा होता है इसे पुत्रही जान सकता है। फिर खयाल आया, खैर जो होना था हुवा-पर इसी बहाने प्रियतमा से मिलन तो हो सकेगा।

चंद्रकांत बाबू शीघ्रता से घरमें घुसे-देखा-माँ बर्तन मलरही थी। माँ को बर्तन मलते देखकर चंद्रकांत बाबू बोलेः—माँ ! आज हाथ से आप बर्तन कैसे मल रही हो ! नोकरानी क्यों नहीं रख लेती ?"

माँ ने रोते हुये कहा-तुझे मेरी परवाह कहां है—आज एक महीने से इस कड़ाके की सर्दी में बर्तन मलती हूं-तूने कभी मुझे पूछा भी ? जब तेरी बहू मलती थी तब कैसा रोज़ उसे धमका कर मना करता था ! सच है, बहू हाथ से मांजती थी—तो माँ से भी मँजवाना ही चाहिये !"

चंद्रकांत बाबू, माँके इस द्वेष पूर्ण उत्तर को सुनकर अत्यंत दुःखित हुये-वे कातर स्वर से बोलेः-मैं तो उसे भी मना करता था और आपको भी करता हूँ ! किंतु वह मानती ही न थी—वह कहती थी—"मुझे आप सब बड़ों की जूठन उठाने में बहुत आनंद आता है।"

माँः-तो मैं कहाँ कहती हूँ कि, बर्तन मलने में मुझे दुःख है! यदि वह बड़ों की इज्ज़त रखने वाली होती तो मेरी आज्ञा को ठुकरा कर पीहर कभी न जाती !"

बात बढ़ जाने के डर से चंद्रकांत बाबू कुछ नहीं बोले—उन्होंने वह तार पढ़कर सुना दिया !

माँ ने व्यंगपूर्वक कहा:—"वैद्यराज बेटी साहिबा" के जाते हुये भी बाप की मौत कैसे हो गई ! खैर अच्छा हुवा पीहर में पड़ी रहने का अच्छा मोका उसे और मिल गया !

माँ की द्वेष पूर्ण बातों से चंद्रकांत बाबू के हृदय में काफी रंज हुवा पर माँ के सामने कुछ भी बोलने का साहस उनमें नहीं था ! डरते हुये धीरे से उन्होंने पूछा:— तब क्या इस गर्मी में मुझे भी जाना होगा ?

माँ:—इसकी फिकर मुझे है—तुझे बोलने की कोई ज़रूरत नहीं ! इस बार मुझे देखना है-वह कब तक पीहर में टुकड़े चावेगी !

चंद्रकांत बाबू:—पर—माँ! इससे भारी लोक-निन्दा होगी!

माँ:—चुप रह बेशर्म कहीं के !

चंद्रकांत बाबू अपना सा मुँह लेकर ऊपर कमरे में चल दिये। वह रात्रि भीषण मानसिक चिंताओं में तड़पते बीती।

३

बारह दिन हो चुके थे—पर अब तक, न कोई आया और न पत्र ही मिला! ऐसे दुःख के समय में भी जँवाई साहब नहीं पधारे, इस घटना से दुःखिनी विधवा सास को भयंकर क्लेश हुवा।

"सच है जँवाई कभी ससुराल के शुभचिंतक नहीं होते"

इस वाक्य को बार बार दुहराकर "चंद्रिका" की माँ रोने लगी। माँ को रोते देखकर चंद्रिका भी, जी भर कर रोई। घर में सिवाय नोकरों के कोई भी निकटस्थ सम्बन्धी नहीं था। ऐसी विकट परिस्थिति में अपनी एकलौती पुत्री के बुद्धिमान पति का नहीं आना—सब को बुरा लगा। सब कोई जँवाई साहब को बुरा भला कह रहे थे। पर "चंद्रिका" को इस बात पर विश्वास नहीं होता था, कि, वे स्वयं अपनी इच्छा से नहीं आये!

बारह दिन का क्रिया कांड समाप्त हुवा—रात्रि हुई—घर में सन्नाटा छागया। सब कोई सो गये चंद्रिका भी अपने कमरे में पड़ रही! चंद्रिका के दुःख का आज पारावार नहीं था। इधर पिता की मृत्यु का दुःख—उधर ससुराल की चिंता!

आखिर बात क्या हुई—जिससे वे नहीं आये। भला ऐसे मोके पर दुश्मन भी अपनी दुश्मनी भूल जाता है—फिर हम लोगों ने ऐसा कौनसा भीषण अपराध किया है! पत्र लिखूँ हे ईश्वर! यह क्या लीला हो रही है—कहीं मेरे सौभाग्य-सूर्य्य तो मुझसे नहीं रूठ गये हैं!

हृदय मंदिर के आराध्य देव!

मेरे पूज्य पिता अब इस संसार में नहीं रहे—हम सब अनाथ हो गये! मेरी दुःखिनी माँ का सौभाग्य--सूर्य्य अस्त हो गया--हमारा सर्व सुख संपन्न घर, श्मशान बन गया। ऐसी भारी मुसीबत के समय में आप नहीं पधारे—यह क्या लीला है!

क्या मैं इन दिनों पत्र नहीं दे सकी इससे आप नाराज हो गये—अथवा गत पत्र में मैंने कुछ अनुचित लिख दिया! क्या करूँ—पिताजी की अवस्था दिन दिन शोचनीय होती जा रही थी—हम लोग रात रात भर जगते रहते थे। समय नहीं मिला, इसीलिये पत्र नहीं दे सकी थी। इतनीसी भूल की ऐसी भारी सज़ा! प्रियतम! हम दुःखियों के लिये क्या मुनासिब है!

सबजगह से रिश्तेदार आरहे हैं--केवल आप नहीं पधारे! भाई बंधुओं में, मैं, किस नाक से ऊँचा मुँह करके बोलूँगी! आप नहीं पधारे यह जानकर मेरी दुःखिनी माँ के हृदय पर वज्रसा टूट पड़ा है! हम लोगों को ऐसे दुःख में देखकर भी क्या आपका हृदय नहीं पसीजता?

इधर आपकी विरहाग्नि मुझे अलग जलाये जा रही है। आप देखेंगे तो शायद मुझे पहचान भी न सकेंगे। आपके बिना मैंने सब सुखों को छोड़ रखा है। इस पत्र को आप तार से भी अधिक समझें। आप पहली गाड़ी से रवाना होकर पधारेंगे, ऐसी उम्मीद है। यहाँ आने पर तबीयत खराब होने का बहाना बना दीजियेगा—बाकी मामला सब मैं सम्हाल लूँगी।

आखिर आपकी दासी हूं—मुझ से कई एक अपराध हुये हैं और होते रहेंगे—क्या आप मुझे क्षमा नहीं करोगे—नाथ?

शीघ्र दर्शन दीजिये—मैं आपके बिना पल पल, पहाड की तरह बिता रही हूं !

पद-पंकज की पुजारिन

दुःखिनी " चंद्रिका "

पत्र लिखकर चंद्रिका सो रही—पर उसे नींद नहीं आई। सारी रात भाँति भाँति की चिन्ताओं से तड़पते बीती !

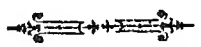

४

पोस्टमेन के हाथ ही में प्रियतमा के पत्र को मेजिस्ट्रेट साहब ने पहचान लिया। एक रुपये का इनाम गरीब पोस्टमेन की हथेली में गुपचुप ढुलक आया ! बडी खुशी से सलाम करते हुये पोस्टमेन अदालत के कमरे से बाहर हुवा।

पत्र यहां पढ़ना ठीक नहीं होगा इसे शांति से घर ही

पहूँगा। न मालूम क्या क्या उपालंभ प्रियतमा ने भेजे होंगे !

उस दिन मेजिस्ट्रेट साहब का मन किसी अदालती कारर-वाई में नहीं लगा। प्रायः सबही मुकदमों की तारीखें आगे बढ़ा दी गईं।

हमेशा क्लब से ८ बजे रात को घर लौटते थे—पर आज क्लब ही न गये ! चंद्रकांत बाबू को आज छः ही बजे घर आते देखकर—माँ ने विस्मय से पूछा:—"चंदू ! आज इतने जल्द कैसे बेटा ?"

"भूख बहुत लगी है—माँ—इसीसे तो आज क्लब ही न गया !"

"तब तो आज हारमोनियम का बाजा सुनूंगी। भोजन बन चुका है—जल्द खालो—कितने दिनों बाद आज तुम बाजा बजाओगे !"

चंद्रकांत बाबू—माँ—की हार्दिक इच्छा को नहीं टाल सके ! भोजन के पश्चात बाजा निकाला—पहले उसे पोंछा—फिर सरगम पर अँगुलियाँ दौडाने लगे !

चाँदनी रात थी—खुली चाँदनी में—चारपाई पर बैठकर चंद्रकांत बाबू मधुर स्वर अलापने लगे ! सामने एक आराम कुर्सी पर माँ लेट गई—और सुनने लगी।

चंद्रकांत बाबू संगीत कला के विशेषज्ञ थे। जिस समय वे एक मधुर अलाप भरके उसे चढ़ाने लगे तब ऐसा मालूम हुआ—मानो चंद्रमा, एक पतंग के समान—उस मधुर कंठ-स्वर से निकलती हुई अटूट अलाप पर थिरक रहा है।

"चंदू ! तुम्हें विधाता ने कैसा मधुर कंठ दिया है। हाँ, आज वह "भैरवी" तो जरा सुनाओ !"

पूरे दो घंटे बीत गये पर माँ के हृदय में गाने सुनने की चाह नहीं मिटी ! इसी समय चंद्रकांत बाबू को प्रियतमा के पत्र की याद हो आई। क्षण भर में स्वर भरा गया—हारमोनियम पर बिजली की तरह थिरकती हुई अँगुलियों की चाल धीमी पड गई! हृदय में पत्र पढ़ने की बेचैनी बढ़ने लगी। माँ रूई की रजाई ओढ़कर लेटी हुई थी—सरदी भी धीरे धीरे बढ़ने लगी—उस मधुर संगीत-स्वर में माँ की आँखे भी झप गईं !

गायन पूरा होते ही-माँ ने रजाई में सिकुड़ते हुये धीरे से कहा—"एक गाना-और सुनाओ चंदू !"

किन्तु, कोई उत्तर नहीं मिला—चंद्रकांत बाबू सरदी और मानसिक उद्वेग से काँप रहे थे। माँ ने फिर पूछा—"क्या शीत लगती है चंदू ?"

"हाँ—बड़े जोर से लग रही है—भीतर चलो माँ—साढ़े नौ बज चुके हैं !"

चंद्रकांत बाबू बाजा उठाकर शीघ्रता से अपने कमरे में चल दिये, माँ भी अपने बिस्तर पर लेट रही !

पिंजरे से भागे हुए शेर की तरह चंद्रकांत बाबू प्रसन्न हुये। उसी क्षण उन्होंने पत्र लिफाफे से निकाल लिया—और लैंप की बत्ती तेज़ करते हुये शीघ्रता से पढ़ने लगे !

पत्र पढ़ते पढ़ते चंद्रकांत बाबू का प्रसन्न मुख गम्भीर हो गया—दूसरे ही क्षण उस गम्भीरता पर उदासीनता की स्याह

चादर छा गई! पत्र समाप्त हुआ—वह हाथ से छूट पड़ा! चंद्रकांत सिर के बालों पर हाथ रखते हुये भयंकर चिंता-सागर में निमग्न हो गये। किंतु, चिन्ता का तूफान चुप चाप सहने योग्य नहीं था—उसे वे नहीं सह सके, हृदय के उद्गार बाहर होकर ही रहे!

क्या मैं हृदयहीन नहीं हूं—स्वार्थी नहीं हूं—यह कैसा निर्दयतापूर्ण व्यवहार है! अपनी जीवन सहचरी को भयंकर विपत्तियों में मरती देखकर भी मेरा हारमोनियम पर मौज करना, यह कैसे पाषाणहृदय की बातें हैं! माँ को न मालूम क्या ज़िद सूझी है। उस समय पीहर जाकर उस बेचारी ने कौनसा अपराध किया! पिता से अंतिम मिलन तो होगया।

पर इस विषय पर सोचने वाला है कौन! मुझे विश्वास है, मां अपनी ज़िद को नहीं छोड़ सकती! तब क्या--करूँ--अपनी असमर्थता जाहिर कर दूं--उन लोगों से क्षमा मांग लूं! उस निरपराधिनी पर जो कुछ बीतेगी-उसे वह सहेगी!

चंद्रकांत बाबू बेचैन हृदय से अधिक नहीं सोच सके! उन्होंने दो चार लाइन में हृदय पर पत्थर रखकर एक रूखा-सा पत्र लिख दिया। वे चुपचाप चारपाई पर लेट रहे।

५

स्त्रियां पुरुषों के पाँव की जूती समझी जाती हैं किन्तु—सास की निगाह में तो बहू म्युनिसीपॉलटी की कचरापेटी से कुछ भी अधिक इज्ज़त नहीं रखती! अपनी खाल के चरण-पोश बनाकर पहनाने वाली भोली बहू भी, सास के भय से सुख की नींद नहीं सो सकती !

सवाल उठता है—सास इतनी ज़ल्लाद प्रकृति की क्यों होती है—और बहू ये सब अत्याचार मूक पशु की तरह सहन क्यों करती है ?

उत्तर स्पष्ट है—जो आज सास बनकर बहूपर शासन कर रही है—अपनी जवानी में वह भी एक दिन ऐसी ही भोली बहू बनकर रही होगी। किन्तु, सास के ज़ुल्मी शासन की सख्तियां सहते सहते उस भोली बहू का कोमल हृदय, दिन दिन पाषाणहृदय बनता गया। परिणाम यह हुआ कि—उन अत्याचारी नज्जारोंको देखते देखते वह भोली बहू—सास बनने के समय तक स्वयं जल्लाद बन गई। जिस तरह बहू जीवन में, गुलाम रहकर सास के सितम सहे-ठीक उसके विपरीत आज सास होने पर वही सितम अपनी बहू पर ढाहने को—वह सास, अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझने लगी। इस तरह मनुष्यों को पशु समझने वाला हिन्दू-समाज का कलंक—एक प्राचीन रिवाज़ की हैसियत से—बहू के भाग्य का फैसला करने वाला न्यायाधीश बन बैठा।

अब बहूरानियों की हालत देखिये। जन्म से ही—मां बाप उन्हें अपनी आज्ञायें मनवाने के लिये—चाहे वे उचित हों या अनुचित हमेशा मज़बूर किया करते हैं। उन्हें अपने चरित्र पर शासन करने की शिक्षा कभी नहीं देते। उन्हें अपने स्वास्थ्य को स्वस्थ रखने की सुविधायें कभी नहीं देते। हमेशा सास और पति की गुलाम रह कर ज़िन्दगी बिताने की कहानियां सुनाई जाती हैं। परिणाम यह होता है कि—

बहू का स्वाभिमान बहुत कुछ तो पीहर में ही छिन जाता है—बाकी बचा हुवा ससुराल में प्रवेश करते ही।

इस तरह अपनी लड़की को आज्ञाकारी बनाने के बहाने उसके स्वाभिमान को कुचलकर—माता, पिता, सास, श्वसुर और घर के सभी बड़े बूढ़ों का तो स्वार्थ सिद्ध होता जाता है—वे उसे एक पालतू बंदरिया की तरह अपनी अंगुली के इशारे पर नचा सकते हैं। किन्तु, अभागे पति के दाम्पत्य जीवन में, जो—"विवाह के पूर्व अपनी नवयौवना पत्नी को नवविकसित गुलाब की तरह प्रफुल्ल देखने के लिये बावला-सा बना हुवा था—जो खुले दिल से प्रणय की प्रथम मुलाकात में, दाम्पत्य प्रेम की उल्लास दायिनी पुष्पमाला एक निर्भीक हृदया स्वाभिमानिनी प्रेयसी की तरह अपने कर कमलों में लिये—हृदय-मन्दिर की अनमोल भेट, हृदयेश्वर के हृदय पटल पर आलोकित करने—मधुर मुसकान की मनोहर और मीठी चुटकियां लेते हुये—अपनी प्रणयिनी को केलिमंदिर में प्रविष्ट होते देखने के सुखस्वप्न देखा करता था—अफसोस एक ऐसी विनाशकारिणी अग्नि-शिखा प्रज्वलित हो उठती है, जिसमें वे प्रणय सुख-स्वप्न देखने वाले संसार के ऊगते गुलाब भस्मी भूत हो जाते हैं।"

जिस बहू का संसार ससुराल का घर मात्र रहजाता है—जिस बहू का नवविकसित आनंददायी मुखड़ा घूँघट की चहार दीवारों में बंद रहकर म्लान और उदासीन हो जाता है—वह बहू अपने उस पति के लिये क्या खाक आनंद की

सामग्री बन सकेगी—जो कि चार आंख का बनकर थियेटर और डॉन्सिंग क्लबों की सैर भी बिना किसी रोक टोक के कर सकता है।

वह बहू, जो गुलामी में जीते जीते इतनी कायर हो चुकी है, कि, रात में चूहे के चलने की आहट सुनकर भी काँप उठती है—वह संसार के सौंदर्य्य लुटेरों से समय पड़ने पर किस तरह अपनी रक्षा करेगी? हजारों घटनायें हिन्दू बालिकाओं और विधवाओं के भगाये जाने एवं चरित्रहीन होजाने की सुनने में नित्य नई आती हैं, संसार हँसता है—हम भी हँसी में गुजार देते हैं। और आगे बढ़े तो यह कहकर चुप हो जाते हैं कि,···"अजी वह तो कुलटा थी।"

अपनी गृहदेवियों को कुलटा कहने वाले बेशर्मों—तुम्हारी ज़बान पर बिजली क्यों नहीं गिरपड़ती। अपनी बहूबेटियों को गुलामी के सिकंजो में कसकर उन अबलाओं की आत्माओं को निर्जीव बनाने वाले—समाज के शैतानों—सोचकर देखो यह सारा अपराध तुम्हारा है। तुम पुरुषत्वहीन होचुके हो जो एक विधर्मी द्वारा अपनी बहू बेटी की इज्ज़त लुटते देखकर भी तुम्हारी नामर्द रक्त शिराओं में खून का जोश नहीं आता।

सीता और सावित्री के रूपमें अपनी गुलाम पत्नियों को देखने वाले मूर्खों! क्या रामचंद्र और सत्यवान की तरह अपने बाहुबल पर—अपने आत्मगौरव पर—विवाह के पूर्व अपने तेजस्व एवं पराक्रम की मोहर अपनी भावी पत्नी के

हृदय मंदिर में अंकित करके—तुमने डंके की चोट संसार के रंगमंचपर—दाम्पत्य जीवन के स्वयंवर में विवाह की वरमाला पहनी है ?

उत्तर—" नहीं । "

तब एक—अपरिचिता—दाम्पत्य जीवन से अनभिज्ञ बालिका को घूंघट की सत्यानाशी काल कोठरी में बंद करके उसकी किस्मत पर ज़बरन कूद पड़ने वाले नवयुवक—अपनी नव भार्य्या को-सीता और सावित्री--सी दृढ़निश्चिनी पत्नी के रूप में खोजना—हंसी की बात नहीं तो क्या है ?

स्त्रियों को गुलाम रखना—यह हिन्दू-समाज का सबसे बड़ा कलंक है । जब तक यह कलंक जड़से मिट न जायगा—अभागे भारतवर्ष को—ईश्वर न करे, पर मेरा निश्चय है, पराधीनता की असह्य मुसीबतें सहना ही होंगी । शायद यह पराधीनता ईश्वरीय दंड है—अपने स्वार्थ के लिये स्त्री-समाज पर अमानुषिक शासन करने का न्यायोचित सच्चा बदला है ।

प्रिय पाठकों ! हिन्दू-समाज के दुःखी दाम्पत्य जीवन को देखकर—जो स्वाभाविक दुःख और मार्मिक वेदना मानव हृदय में हो सकती है-ऊपर की कही हुई कुछ बातें---ये उसी दुःखी हृदय के हार्दिक उद्गार हैं ! इस विषय पर बहुत कुछ लिखने की बातें अभी दिल ही में हैं—पर उपन्यासकार कहीं कथानक से बाहर का विषय कहकर, मुझ पर औपन्यासिक नियमों के भंग करने का इलज़ाम न लगादें—यही जानकर मैं पूर्व कथानक के सिल-सिले में आता हूँ । मेरी समझ से,

तो ऊपर लिखी हुई चन्द लाइनें कथानक से बाहर की सिद्ध नहीं हो सकतीं, चूँकि वाक्य रूपी इंटों से "हिन्दू मारशल-लॉ" का ताज़िया खड़ा करने के लिये—ऊपर कही हुई लाइनें मजबूती के ख़याल से "सीमेंट" समझकर उपयोग में लाई गई हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

बहूरानी को पीहर गये करीबन आठ महीने बीत चुके थे—किंतु, लाख कोशिश करने पर भी चंद्रकांत बाबू अपनी प्रिय पत्नी को सम्मान सहित स्वयं जाकर नहीं लासके! अंत में मां की ज़िद ही पूरी होकर रही।

बहूरानी आज आने वाली है—यह बात चंद्रकांत बाबू को उनके कल आये हुये पत्र से मालूम हो चुकी थी! किंतु, मां को यह खबर देने की हिम्मत बाबू साहब में नहीं थी। कम से कम घर आये हुये मेहमान को लिवा लेने स्टेशन तक जाना आवश्यक था—किंतु यह भी उनसे नहीं हो सका!

कई महीनों बाद पीहर से आने वाली प्रेयसी के आगमन का समाचार—किस अभागे को प्रसन्न नहीं कर सकता? हाँ—नहीं कर सका—हमारे मेजिस्ट्रेट साहब को!

उन्हें आज प्रसन्नता के स्थान पर—भीषण मानसिक चिंतायें रह रह कर चिंतित कर रही थीं! फिर ख़याल भी होता—था—उफ़! चंद्रिका—मेरे हृदय—मंदिर की रानी—चंद्रिका, मुझ पाषाण हृदय के इस कठोर व्यवहार को कैसे

सहन करेगी ! एक घंटे के बाद वह स्टेशन पर उतरेगी—वहाँ मुझे न पाकर—मेरे किसी नोकर को भी न पाकर, उस कोमलांगी के दुःखित हृदय पर अपमान की कैसी गहरी चोट लगेगी ! उफ़ ! वह दुःखिनी इस मार्मिक वेदना को कैसे सहेगी !

तब क्या स्टेशन पर चल दूँ—प्रियतमा को पुष्पहार पहनाने—प्रेम की भेंट देने—उस दुःखिनी का स्वागत करने चलदूं ?

किन्तु, यदि यह बात माँ को मालूम हुई तो—क्या हाल होगा हम दोनों का ! बेशर्म, निर्लज्ज, बहू को सिर पर चढ़ाने वाले—आदि झिड़कियाँ सुनने के बाद मेरा पीछा तो छोड़ दिया जावेगा—किंतु, उस भोली हिरनी पर न जाने क्या क्या सितम ढाये जा सकेंगे ! और कहीं माँ को यह मालूम हो गया कि, वह मुझ से पत्र व्यवहार करती थी—तो फिर घर भर में वह बेशर्म कही जावेगी !

प्रथम तो मैं खुद निष्ठुर—किस नाकसे उसे मुँह दिखाने जाऊँ-उसे देखकर पश्चाताप से मेरा मस्तक झुक जावेगा। मेरा नहीं जानाही उसके हितके लिये उपयुक्त होगा।

नहीं जाने का दृढ़ निश्चय करके ही चंद्रकांत बाबू ऊपर खिड़कीसे झांककर प्रियतमा के आगमन की राह देखने लगे। मानसिक चिंतायें पूर्ववत उनकी उदासीन मुख-मुद्रा पर अंकित हो रही थीं। वे सोचते थे—जब वह आकर मांके चरणों में गिरेगी—अपने अपराधों की क्षमा मांगेगी—क्या तब भी मां उस निरपराध बालिका को क्षमा नहीं करेगी ?

मैंने गत पत्र में लिख दिया था—"तुम मांके चरणों को पकड़ लेना—जब तक वह उठाकर तुम्हें छाती से नहीं लगाले—उसे मत छोड़ना !" इतना सबकुछ करने पर भी क्या मांके हृदय में परिवर्तन नहीं होगा ?

चंद्रकांत बाबू भांति भांति की कल्पनाओं से शोकातुर हो रहे थे—इसीसमय—"टम टम" आवाज़ कर आते हुये इक्के को अपने दरवाजे पर रुकता देखकर चंद्रकांत बाबू—आनंद और आगे क्या होगा, इस कल्पना के उद्वेग से आतुर हो उठे ! इक्के से उतरती हुई चंद्रिका की हालत देखकर चंद्रकांत बाबू का हृदय भर आया। पूरी तरह उसे नहीं देख सके थे—पर उसकी वे कलाइयाँ जो यहाँ से जाते समय गुद गुदे मांस से लदी हुई थीं—एक रुग्ण स्त्री की तरह मुरझाई हुई-पीली पीली दिखाई दीं। चंद्रिका ने इक्के से उतरते ही—खुली खिड़की की तरफ झाँका—किंतु चंद्रकांत बाबू पीछे की तरफ खिसक चुके थे ! चंद्रकांत बाबू ने खिड़की की दराज़ से झाँका, चंद्रिका के साथ आने वाली बुढिया जब तक इक्के से सामान उतार रही थी-चंद्रिका टक टकी लगाये—खिड़की की ही तरफ देखती रही। उसका ध्यान भंग तब हुवा जब बुढ़िया ने इक्के वाले को देने के लिये छः आने के पैसे मांगे।

उसकी आँखों से छलकते हुये आँसू चंद्रकांत बाबू अब तक नहीं देख सके थे—किन्तु, जब रूमाल से "चंद्रिका" ने अपनी आँखें पोंछीं, चंद्रकांत बाबू अपनी प्रिय पत्नीकी हालत

पर रो पड़े! किंतु, समय रोने का नहीं था--आगे क्या होता है यह देखने का था। आँसू पोंछ कर वे शीघ्रता से नीचे की तरफ उतर आये और स्नानागार में दंतमंजन करने के बहाने घुसकर उत्सुक हृदय से दरवाजे की तरफ देखने लगे। स्नानागार के दाहिने तरफ रसोई घर था--उसी में माँ रसोई बना रही थी। रसोई घर के सामने ही मकान का दरवाजा था! चंद्रिका--सादे कपड़े पहने--सिर झुकाय लंबा घूँघट निकाले धीरे से दरवाज़ा खोलकर प्रविष्ट हुई। अबतक मांने उसे नहीं देखा था। वह रसोईघर के सामने आकर खड़ी होगई--इसी समय मांने उसे देखलिया। सासके पांव लगने के लिये चंद्रिका पांच मिनट तक रसोईघर के दरवाजे पर खड़ी रही--पर सास इस तरह अजान बनी रही गोया उसने रसोईघर के फाटक की तरफ झांका ही नहीं हो।

चंद्रिका--सास को नाराज़ समझकर--उसे प्रसन्न करने के इरादे से--डरते हुये रसोई घर में प्रविष्ठ हुई--और आगे बढ़ी--किन्तु, इसी समय सास को कुछ बोलते देखकर वह ठिठक कर खड़ी होगई।

सास ने--कठोर ज़बान से कहा:--रेल के अपवित्र कपड़े लिये रसोई घर में घुसी चली आती है--कैसी म्लेच्छ औरत है! मैं अंधी नहीं थी--मैंने तुझे दरवाजे पर ही देख लिया था—पर भाजी छौंक रही थी। क्या इतनी सी देर भी तुझे सब्र नहीं हो सकी?

चंद्रिका, शिकारी की गोली से बची हुई हिरनी की तरह

भय भीत होकर रसोई घर के बाहर होगई ! इस दुतकार को सुनकर उस दुःखिनी के हृदय पर वज्र-सा प्रहार हुवा—उसकी आँखों से चौसर अश्रुधारायें वहचलीं ! एक दो बार अपने प्रियतम को देखने के लिये उस दुःखिया ने इधर उधर नज़र दौड़ाई--पर वह उन्हें नहीं पा सकी। इसी समय चंद्रिका ने देखा द्वार की बाजू में एक तरफ प्रियतम की पद रक्षिकायें रखी हैं। इस बार उसकी आँखें और भी अधिक आँसू वहाने लगीं—उस दुःखिया का हृदय इस कल्पना से सहसा चौंक उठा--"क्या हृदयेश्वर भी मुझसे अप्रसन्न हो गये हैं।" मेरा पत्र तो उन्हें मिला ही होगा—फिर इस समय भी उनका घर में नहीं रहना—हे ईश्वर ! यह कैसी लीला है।

चंद्रकांत बाबू अपनी दुःखिया पत्नी की रुदनलीला अच्छी तरह देख रहे थे—उनकी आँखें भी डबाडब थीं !

प्रियतम की जूतियां देखकर चंद्रिका जब चौंकी थी—चंद्रकांत बाबू उसके चौंकने के अभिप्राय को अच्छी तरह समझ चुके थे। उनके हृदय में असह्य वेदना हो रही थी।

करीबन दस मिनट तक चंद्रिका रोती रही—तब एका-एक सास बाहर आई और बोलीः—बोल क्या कहती है—कौनसी मेरी पूजा करने के लिये रसोई घर में घुसी आ रही थी ! पर यह तो बता—तू रो क्यों रही है—क्या मैंने रसोई घर में आने से मना किया इसलिये ? वाहरे तेरा त्रियाचरित्र कहते हुए सास खूब जोरसे टहाका मारकर हँस पड़ी ! चंद्रिका पत्थर की प्रतिमा की तरह खड़ी रही—वह शोक सागर में डूबी जा

रही थी। सासको सामने देखकर भी वह पांव लगना भूल गई। चंद्रकांत बाबू "चंद्रिका" को इस तरह मौन देखकर अफसोस करने लगे—वे मन ही मन कहने लगे--चंद्रिका यह कैसी भूल कर रही हो। कहीं मां के हँसने से तुम्हें क्रोध तो नहीं हो आया! चंद्रकांत बाबू अपने हाथों से सिर के बाल पकड़ते हुये—अवाक से रह गये!

इसी समय सास ने चंद्रिका का हाथ पकड़ कर व्यंग करते हुवे कहा:—बाप के घर में खूब माल खाया मालूम होता है—तब ही तो देखो हलदी-सा रंग—और हाथों पर मांस चढ़गया है!

चंद्रिका इस व्यंगको भी नहीं सह सकी—पांवो पर खड़ा रहना उसके लिये मुश्किल हो गया—पांव लड़खड़ाने लगे! इसी समय चंद्रिका को सास के पांव लगने की बात याद हो आई। चंद्रिका ने अपने ब्लाउज़की जेब से पांच रुपये निकाल कर सास को सोंप दिये—और खुद सास के दोनों चरणों को अपनी बाहुपाश में गूँथकर अपना मस्तक चरणों पर रखकर—सिसकियां भरने लगी!

चंद्रकांत बाबू अपनी पत्नी की बुद्धिमता से मनही मन प्रसन्न हुये। पर यह क्या! सास ने भीषण क्रोध की मुद्रा धारण करते हुये वे रुपये बड़े जोर से एक तरफ फेंक दिये—फिर चंद्रिका को बड़े जोर से पांव की ठोकर मारते हुये अलग ढ़केल दी—और आप स्वयं क्रोध की प्रतिमूर्ति बनकर गरजने लगी। मूर्ख छोकरी! क्या पांच रुपये का लोभ

देकर तू मुझे तेरी गुलाम और एहसानमंद बनाया चाहती है ? मुझे तेरी चंद ठीकरियों की जरूरत नहीं है। मेरा लड़का मेजिस्ट्रेट है—कहां उस बेचारे की किस्मत में तुझसी मक्कार औरत लिखी थी !

चंद्रकांत बाबू मां के इस अमानुषिक व्यवहार को नहीं देखसके—उन्होंने अपने दोनों हाथों से आँखे मींदलीं !

उधर चंद्रिका सास की ठोकर खाकर आँगन में लोट गई थी—उसका अश्रुपूर्ण मुखड़ा आँगन की धूल से लिपट चुका था। किन्तु, उसने सास की ठोकरकी कोई परवाह न करते हुये उठकर पुनः सास के चरण पकड़ लिये। फिर दोनों हाथ जोड़कर पल्ला पसार कर क्षमा माँगली--पर सास को रहम नहीं हुवा—उसने मुँह फेर लिया। रोती बिलखती बहूरानी को पुनः झटके से अलग हटाते हुये वह रसोई घर में चली गई। चंद्रिका आंगन में मस्तक टेक कर--करुण रुदन करने लगी। उसकी लुगड़ी मस्तक से सरक गई थी-सिर के-रूखे बाल धूल से लिपटकर हृदय विदारक नज्जारा दिखा रहे थे ! चंद्रकांत बाबू इस नज्ज़ारे को अधिक नहीं देख सके। वे आँखों के आँसू पोंछकर स्नानागार से बाहर निकल आये। इसी समय वह बुढ़िया जो चंद्रिका के साथ आई थी—पर सामान उतारने, नीचे ही रह गई थी—" हाय—हाय-बेटी-तुझे यह क्या हो गया " कहते हुवे दौड़ पड़ी। बुढ़िया ने चंद्रिका को आँगन से उठाकर अपनी गोद में बिठा लिया और उसके आँसू पोंछने लगी !

चंद्रकांत बाबू ने रसोई के बाहर ही से अत्यंत धीमे स्वर में कहा—मां ! आपकी ज़िद पूरी हो चुकी—आखिर वह अभी बालिका ही जो है—उसकी भेंट को स्वीकार कर लो—उसे अब क्षमा कर दो—मुझे विश्वास है वह आपकी आज्ञा को अब कभी न टालेगी।

जो सजा उसे दी जा चुकी है—वह उसकी ताकत के बाहर पहुंच चुकी है।

मां ने दाल के भरतिये में कुरछी घुमाते हुए कठोरता पूर्वक उत्तर दिया:—फिर तेरी वही आदत—मुझे शिक्षा देने वाला तू है कौन ! पांच रुपये देकर वह मुझे गुलाम बनाया चाहती है—तू भी मुझे गुलाम बनने की शिक्षा देने आया है ! तेरे कायदे कानून तेरी अदालत में ही रहने दे-वे यहां घर में नहीं चलने के !! तू कहता है, उसे काफी सज़ा दी जा चुकी है ! यह सब त्रिया चरित्र है !!

चंद्रकांत बाबू मां के स्वभाव से परिचित थे। अस्तु, बात को अधिक नहीं बढ़ने देने के अभिप्राय से वे गंभीरता पूर्वक बोले खैर भूलसे आपके प्रेम के पीछे यदि रसोई घर में वह चली आई थी तो आपको इस कदर उस दुःखिया को नहीं दुतकारना था—यदि आप प्रेम से उसे कह देती तो उसे इतना दुःख नहीं होता—खैर, अब भी उसकी भेंट स्वीकार कर उसे गले लगालो !

किन्तु इस उपदेश का उलटा असर हुआ—भीषण क्रोध मुद्रा को धारण करके माँ रसोई के दरवाजे पर आकर खड़ी

होगई, फिर दौड़कर चंद्रिका का हाथ पकड़ लिया । फिर उस रोती बिलखती अभागिनी को बेरहमी से रसोई घर में घसीटकर वह ले गई और बोली:--मेरे लड़के को अपना गुलाम बनाने वाली प्रेतिनी! तू ने आते ही कौन सा जादू मेरे लड़के पर कर दिया है-जो आज मेरे सामने वह बोल रहा है! "ले चढ़ चौके पर, चढ़ जा"--यह कहते हुवे सास ने चंद्रिका को ज़बरन चौके पर ढकेल दिया! चंद्रिका एक करुण चीत्कार करते हुये ठीक चूल्हे पर जा गिरी धक्केसे दाल का भरतिया लुढ़क कर चौके में गिर गया ! चंद्रकांत बाबू क्षण भर में दौड़ पड़े और चंद्रिका को चूल्हे परसे खींच लिया ! यदि ५ सेकण्ड की देरी की गई होती तो चंद्रिका के सिर के बालों में आग लग जाती । चंद्रिका को अलग हटाया ही था, कि, माँ, भीषण क्रोध की प्रतिमूर्ति बनकर कहने लगी—"बेशर्म-मेरे सामने अपनी औरत को गोद में उठाने वाले निर्लज्ज--अब मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया है कि, इस घर में मेरा रहना नहीं हो सकेगा ! ठीक है--खूब आराम से तुम दोनों मिया बीबी इस घरमें रहना--मुझे नहीं मालूम था कि-बुढापे में इस तरह मेरी मिट्टी खराब होगी!" इसी समय मां ने दोनों हाथों से अपना सिर पीट लिया--और जोर से रोते हुये मकान के दरवाजे की तरफ भाग चली !

चंद्रकांत बाबू चंद्रिका को वहीं छोड़कर मां की तरफ लपके--चंद्रिका भी रोती हुई उधर ही दौड़ पड़ी। "माँ-माँ यह क्या करती हो--कहां जा रही हो"--कहते हुये चंद्र-

कांत बाबू ने कस कर मां का एक पाँव पकड़ लिया, और दूसरा चंद्रिका ने। "नहीं मैं अब नहीं—रहूँगी—यह अपमान मुझसे नहीं सहा जाता!" यह घर अब मेरा नहीं है। यह कहते हुये मांने उन दोनों को ठुकरा दिया! किंतु इसी समय वह बुढ़िया जो चन्द्रिका के साथ आई थी दौड़पड़ी—और लपक कर दरवाजे पर ताला मार दिया!

घरभर में कोहराम सा—मच गया—वह नज़ारा अत्यंत वीभत्स था!

६

वैसे तो चंद्रकांत बाबू के बहुत से मित्र थे—किंतु रजनीकांत उनमें प्रमुख थे! एक साथ दोनों मित्र स्कूल में खेले और पढ़े थे! रजनीकांत के पिता—एडवोकेट जनरल थे। रजनीकांत बाबू के माता पिता का स्वर्गवास हो चुका था। अपने पिता के सामने ही रजनीकांत बाबू का विवाह पक्ष

उच्च कुलीन घराने की अत्यंत सुंदरी लड़की से हुवा था। पिता के मरने के पहले एडवोकेट की परीक्षा रजनी बाबू पास कर चुके थे--और वकालत भी करने लगे थे।

किन्तु, पिताजी के मरने बाद ही—इनकी वकालत का ढर्रा बिगड़ने लग गया। वकालत ठीक नहीं चलने का मुख्य कारण यही था—कि पिता के अपरिमित धन को पाकर रजनी बाबू आलसी और विलासप्रिय हो चुके थे। समय की पाबंदी नहीं हो सकने से उनकी वकालत धीरे धीरे बैठ गई।

रजनीकान्त बाबू की धर्मपत्नी "रजनी" अनुपम सुंदरी सती साध्वी भद्र महिला थी। घर का सारा काम सुचारु रूप से उसने सम्हाल लिया था!

वैसे तो रजनी बाबू बचपन ही से बड़े नटखट एवं शौकीन थे—किन्तु, पिताजी के मरने के बाद उनकी विलास-प्रियता की सीमा नहीं रही। पैसा काफी था—पर खर्च भी बहुत जोरों से हो रहा था।

चन्द्रकांत बाबू के यही एक प्रधान बाल सखा थे। ये दोनों मित्र आपस में खूब सभ्यता का व्यवहार रखते थे। इन दोनों की मित्रता, आदर्श प्रेम की जीती जागती प्रति-मूर्ति थी।

किन्तु, रजनीकान्त बाबू का एक और मित्र था, जिसका नाम था मेहमूद। वैसे मेहमूद भी एक शरीफ घराने का था—उसके पिता जवानी में किसी नव्वाब के वजीर

आलय रह चुके थे। किन्तु, नव्वाब ने किसी कारण वश उनकी कुल जायदाद जप्त कर उन्हें अपने शहर से निकाल दिया था! उस समय जो नव्वाब पर, मेहमूद के पिता ने मुकदमा चलाया था—उसकी वकालत रजनी बाबू के पिता "एडवोकेट जनरल" ने ही की थी। मुकदमे में कुछ जायदाद मेहमूद के पिता को वापसी मिल गई थी। तभी से मेहमूद के पिता, रजनी बाबू के घर से घरूपे का सम्बन्ध रखते आये हैं। रजनी बाबू की मित्रता मेहमूद से खुले दिल की थी—वे कोई बात मेहमूद से नहीं छुपाते थे—उसी तरह मेहमूद भी रजनी बाबू के बिना किसी काम में हाथ नहीं डालता था।

किन्तु, चन्द्रकान्त बाबू से रजनी बाबू, ऐसे दुखे विषयों पर नहीं बोल सकते थे। दोनों मित्र अपने अपने चरित्रों को एक दूसरे की निगाह में उच्च कोटि का बनाये रखने की फिक्र रखते थे।

मेहमूद का हर समय घर में आना जाना रजनी को बहुत बुरा लगता था—किन्तु, वह पति का मित्र था--उसके विषय में कुछ भी कहने का साहस रजनी में नहीं था।

रजनी बाबू भी दिन में एक दो बार मेहमूद के घर अवश्य जाया करते थे। इसके सिवाय नाटक सिनेमा थिएटर देखने में रात के दो दो बजे तक घर नहीं आना यह आदत भी रजनी को बहुत बुरी लगी। कुछ दिनों तक वह शर्म से नहीं बोली—किन्तु, एक दिन हिम्मत करके उसने उनसे कहा—"प्राणनाथ! आप हमेशा रात्रि में देरसे घर पधारते

हैं—इस इतने बड़े घर में मैं डरा करती हूँ। आखिर रात्रि में जगने से आपका स्वास्थ्य भी तो पहले-सा नहीं रहा है। क्षमा कीजिये मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ--इस शौक को छोड़ दीजियेगा। किसी एक दिन आप जायें तो उसमें कोई हर्ज नहीं है--पर हमेशा जाना--नाथ, आपके स्वास्थ्य को गिरा देगा--साथ ही पैसा भी बरबाद होता ही है।"

रजनी बाबू ने मुसकराकर जवाब दिया:--किन्तु, क्या करूँ--जिसे "मित्र मेहमूद" नहीं मानता--उसे बड़ा शौक है--वही मुझे घसीट ले जाता है।

"क्षमा कीजिये स्वामी! मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ--कई बार दिल में आया कह दूँ पर नहीं कह सकी। आज आपको प्रसन्न जानकर कहती हूँ--आप मेहमूद से इतनी अधिक मित्रता क्यों बढ़ाये हुये हैं? एक मुसलमान का रात दिन घर में आना--क्या आपको अच्छा लगता है?"

रजनी बाबू की प्रसन्न मुख-मुद्रा गंभीर होगई--फिर क्रोध की चिनगारियाँ चमक उठीं! रजनी प्रियतम की मुख-मुद्रा देखकर काँप उठी! इसी समय रजनीकान्त ने कठोरता पूर्वक कहा:--"आखिर मेहमूद ने तेरा कौनसा कुरु तोड़ दिया है जो तू मुझे मेहमूद से जुदा किया चाहती है! वह मुसलमान है--पर क्या उसके आने से यह मकान तो मुसलमान नहीं हो जायगा! याद रखो आइन्दा कभी मेहमूद के विषय में नहीं बोलना!"

रजनी अपने पति के मुख से इस फटकार को सुनकर

अत्यंत दुःखी हुई—पर सहन करने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं था।

रजनीकान्त बाबू समय पर भोजन भी नहीं किया करते थे—इस अनियमित आहार विहार से उनका स्वास्थ्य दिन दिन गिरने लगा!

रजनी, पति के स्वास्थ्य की चिन्ता से दिन रात चिंतित रहती थी—वह बार बार कहती, स्वामिन्! आपको क्या, अपने स्वास्थ्य की भी चिन्ता नहीं है? आप समय पर भोजन तो कर लिया करें!

किन्तु, रजनी बाबू उत्तर में झल्लाकर कहते:—हम मरे नहीं जाते हैं जो तुझे अभी से हमारे स्वास्थ्य की चिन्ता करना सूझी है।

रजनी ज़हर की घूंट पीकर चुप हो जाती। रजनी-बाबू सुबह हवाखोरी पर मेहमूद के साथ जाया करते थे! वहां से आठ बजे घर वापस लौटते थे! तबतक रजनी दूध चाय—कलेवा तयार रखती थी जिसे वह सप्रेम, रजनी बाबू के सामने खड़ी रहकर, उन्हें प्रसन्न करते हुये, स्वयं अपने हाथ से खिलाया करती थी।

एक दिन दस बज गये तब आये! रजनी उदास होकर खड़ी रही। इसी समय रजनीकांत बाबूने हँस कर कहा-"क्या हम देर से आये हैं इसलिये तुम नाराज़ हो गई हो रजनी?" नहीं—आप पर नाराज़ होना यह मेरा धर्म नहीं है—पर मैं कब से आपकी इन्तजारी में खड़ी हूँ। आप समय पर

भोजन नहीं करते, इससे मुझे बहुत दुःख होता है !"

रजनी बाबू ने दूध का कप उठाया और बोले—"तब आज तो तुम अपने हाथों से हमें दूध पिलाओगी ही नहीं !"

रजनी मुसकरा उठी—दूधकी प्याली उसने प्रियतम के हाथ से लेली और उन्हें पिलाने लगी। पहली ही घूँट मुँह में थी, कि, किसीने बाहर से पुकारा—"बाबू साहब ! रजनीकांत बाबू !!"

"कौन मेहमूद—ठहरो आता हूँ !" कहते हुवे रजनीकांत शीघ्रता से उठ खड़े हुवे ! रजनी हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी-'स्वामिन् ! पहले कलेवा कर लीजियेगा—फिर बाहर जाइये !" किंतु रजनीकांत बाबू कुछ भी ज़बाब नहीं देकर जाने लगे। इसी समय रजनी ने प्रियतम के पांव पकड़ लिये और प्रार्थना की—"परोसी हुई थाली को छोड़कर मत जाइये नाथ !" किंतु, रजनी बाबू ने उसे पांव से ठुकरादी और आगे बढ़ चले ! रजनी रो पड़ी—उसके मुँहसे एक आह के साथ एक वाक्य निकल पड़ा—"हाय, यह हत्यारा मेहमूद खाने के समय भी कहां से आ मरा !" रजनी बहुत धीरे से बोली थी, किंतु रजनीकांत ने सुन लिया। वे भीषण क्रोध मुद्रा धारण कर उलटे पांव लौट पड़े ! उन्होंने उस सजी हुई थाली को आँखों से अँगार बरसाते हुये उठा ली—और उस रोती हुई अबला पर बलपूर्वक दे मारी ! बड़े ज़ोर की चोट लगी—चीनी की प्यालियां और कांच की गिलास रजनी के बदन से टकराकर चूर चूर होगई। दूध चाय—और कलेवा—

रजनी की साड़ी पर वह चला! चोट लगने से दो तीन जगह से लहू भी बहने लगा!

रजनीकांत शीघ्रता से कमरे के बाहर हो गये!

इतना सब कुछ होने पर भी रजनी दिलही दिल में सिसकती रही। उसे भय था, कहीं मेरा रोना बाहर वाले न सुन लें! रजनी भय से काँप उठी—पति को क्रोधित हुये जान कर वह अपनी चोट का दुःख भी भूल गई! वह पगली की तरह इधर उधर घूमने लगी! रूठे हुये पतिदेव को किस तरह मनाऊं, हाँ उनके चरणों में गिरकर माफी मांगलूँ!

बाहर मेहमूद खड़ा था, रजनी बाबू को क्रोधित देखकर वह अधिक नहीं बोला—सिर्फ एक पत्र देकर चलता बना।

रजनी बाबू खूँटी से बेत उतार कर, आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ बरसाते हुये तेजी से दौडकर पुनः रजनी के सामने खडे होगये। रजनी उसी क्षण, रजनी बाबू के चरणों में गिर पडी—"क्षमा करो प्राणनाथ—मेरी भूल हुई।"

किंतु रजनीकांत ने निर्दयता पूर्वक—यह कहते हुये कि —मेहमूद के खून की प्यासी—उसे हत्यारा कहने वाली चांडालिनी—ले मज़ा चख —सड़—सड़—पाँच छः बेंत उस निरपराधिनी अबला की पीठ पर जमादी—इस मार को वह सुकुमारी नहीं सह सकी। वह बड़े जोर से चीख उठी—"हे देवता मुझे क्षमा करो!"

इसी समय चंद्रकांत बाबू ने एकाएक कमरे में प्रवेश किया! रजनीकान्त मित्र को इस समय अचानक आया देख-

कर चौंक उठे। बेंत उनके हाथ से छूटपड़ी—उनकी नज़र ज़मीन की तरफ झुक गई।

चन्द्रकान्त बाबू ने यह लीला देखकर—कड़ी ज़बान से कहा:—रजनीकांत! यह क्या लीला है—स्त्री पर हाथ उठाने का तुमको क्या अधिकार है। आखिर उसने ऐसा क्या अपराध किया जिसकी वजह से, उसे खून से तूने रँग दी है?

रजनी अपने प्रियतम के सिरको नीचा देखकर चौंक उठी। उसने शीघ्रता से आँखें पोंछ डाली—कपड़े ठीक बनालिये—सिसकना बंद कर दिया और चन्द्रकान्त बाबू के सामने आकर मुसकरा कर बोली—"भाई साहब—इसमें आपके मित्र का कोई दोष नहीं है। मेरे हाथ से रकेबी का थाल ठोकर लगकर गिरपड़ा-मुझसे नुकसान हुआ, इसीलिये मुझपर वे नाराज़ हो रहे थे।"

रजनी की कलाई से बुरी तरह खून बह रहा था—जिसे रजनी साड़ी से छिपा रही थी—किन्तु, चन्द्रकान्त बाबू ने उसे देख लिया। उन्होंने करुण ज़बान से पुनः कहा—रजनी तुम असली बातको छुपाती क्यों हो—यह खून क्यों बह रहा है? ठहरो उसपर पट्टी चढ़ादूँ। चन्द्रकान्त बाबू ने अपना रुमाल निकाल कर रजनी की कलाई पर बाँध दिया।

रजनी ने उसी तरह धैर्य्य पूर्वक पुनः जबाब दिया:—"फूटी हुई कांच की गिलास से यह चोट मुझे लगी है!"

चन्द्रकान्त बाबू वहाँ अधिक नहीं ठहरे—रजनीकान्त का हाथ पकड़ कर बैठक खाने के कमरे में चल दिये। जाते

समय चन्द्रकान्त बाबू ने पीछे फिरकर देखा तो—रजनी की आँखों से आँसू बह रहे थे !

कुर्सीपर बैठते हुये चंद्रकांत बोले—रजनीकांत—देखो तुम इस सती साध्वी को न सताया करो। ऐसी भाग्यवान स्त्री तुम्हें सात जन्म में भी नहीं मिलेगी ! इसके सिवाय तुम मेहमूद का साथ छोड़ दो—कितनी बार मैं तुम से कह चुका हूँ ! उसका इस घर में आना जातिवालों को बुरा लगता है—लोग तरह तरह की बातें करते हैं।

रजनीकांत आज बुरी तरह लज्जित हुये थे—वे दबी ज़बान से बोले:—"भाई साहब ! मैंने तो आपकी छोटी बहू को कुछ नहीं कहा—यह जरासा कहने पर इसी तरह रो दिया करती है। और आजकल मेहमूद भी यहाँ अधिक नहीं आता है—मैं आपकी आज्ञा से बाहर नहीं हूँ।"

इसी समय चन्द्रकान्त बाबू रो पड़े ! रजनीकांत ने उनके आँसू पोंछते हुये पूछा:—"यह क्या बात है, आप क्यों रो रहे हैं भाई साहब !"

"क्या कहूँ रजनी—आज तुम्हारी अभागिनी भौजी जब से आई है—घरमें कोहराम-सा मचा हुआ है। सबका खाना पीना हराम हो रहा है ! मैं क्या करूँ किसे समझाऊँ—ऐसे दुःख में किस तरह जीवित रह सकूँगा।"

इसके बाद चंद्रकांत बाबू ने बीती हुई सारी कहानी कह सुनाई ! रजनीकांत उत्सुक होकर बोले:—आज मैं स्वयं जाकर अम्माजी को समझाऊँगा।

चन्द्रकान्त बाबू ने कहा—ठीक है उस अभागी को धीरज बँधाने के लिये—छोटी बहू को भी भेज देना। तुम लोगों के प्रयत्न से यदि घरका कलह मिट सका तो बड़े सौभाग्य की बात होगी।

बड़ी देर तक बात चीत होने के पश्चात् दोनों मित्र अपने अपने कार्य्य में लग गये।

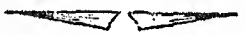

७

रजनीकान्त बाबू के दिन भर के प्रयत्न के बाद संध्या को जब चन्द्रकान्त बाबू अदालत से घर आये सब ने भोजन एक साथ किया। दिन भर सारा घर भूखे रहा था—यहां तक कि "चन्द्रिका" के साथ आई हुई बुढ़िया समधिन भी भूखे ही ठुकी !

भोजन तो सब ने कर लिया था—पर उदासीनता ज्यों की त्यों सबके चेहरों पर बनी हुई थी! इसी समय रजनीकान्त बाबू ने एक तरफ कोने में बैठी हुई चन्द्रिका की तरफ फिर कर कहाः--भाभी साहब! आप सब चिन्ताओं को भूलकर--इन मलीन वस्त्रों को बदल लीजियेगा। शीतल जल से हाथ पाँव धोकर--बढ़िया वस्त्र शीघ्र पहन लीजियेगा—फिर वहां पधार कर अपनी सास से एक बार मेरे सामने सच्चे दिल से माफी माँगो! आपकी सास बुद्धि-मान् है—मैं आपके सब अपराध क्षमा करवा दूँगा!

चन्द्रिका के पास छोटी बहू रजनी भी बैठी थी—उम्र में चान्द्रिका कोई साल भर रजनी से बड़ी होगी। रजनी ने चंद्रिका का हाथ पकड़ लिया और उसे ऊपर चंद्रकांत बाबू के कमरे में ले चली! रजनी पहले भी दो चार बार चंद्रिका से मिल चुकी थी—पर चांद्रिका, रजनी से भी शर्म किया करती थी।

चंद्रकांत बाबू की माँ इस बार कुछ नहीं बोली—इससे चंद्रकांत बाबू के उदास मुख पर कुछ प्रसन्नता की झलक दिखाई दी। दोनों बहनें ऊपर गईं—इधर दोनों मित्र बाहर खुली छतपर बैठकर इधर उधर की बात चीत करने लगे!

रजनी अपने पति के आगे भयभीत हिरनी की तरह रहती थी-किंतु वैसे वह बहुत चपल थी! ऊपर कमरे में पहुँचतेही रजनी ने एकदम चंद्रिका का घुँघट उघाड़ दिया-और कहाः—" अब तो तुम्हारा मुँह देखलिया—बोलो अबतो

मेरी शर्म नहीं करोगी !"

चंद्रिका ने दोनों हाथों से मुँह ढाकलिया और कुछ नहीं बोली ! रजनी ने पुनः व्यंग पूर्वक कहा:—"मैं तुम्हारी सास नहीं हूँ—जो तुमने मुझसे बोलना तक छोड़ दिया ! तुम्हारे घर में यह कैसा विचित्र रिवाज है—तुम सास से बोलती तक नहीं हो ?"

इस बार चंद्रिका ने धीरे से कहा:—"नहीं बोलती हूँ यह अच्छा ही करती हूँ—बिना ज़बाब दिये ही मेरी यह हालत हो रही है—जब ज़बाब देने लगूंगी तब न जाने मुझपर क्या बीतेगी"— कहते हुये चंद्रिका रोपड़ी ! रजनी ने चंद्रिका के दोनों हाथों को खींचकर—चंद्रिका के आँसू पोंछ डाले—चन्द्रिका ने अपना मुँह—रजनी की साड़ी में छिपालिया !

इस बार रजनी ने अत्यंत कातर स्वर में कहा:—"तब क्या मुझे अपना मुँह नहीं दिखाओगी ? लो, तब मैं भी तुम्हारा घूंघट निकाले लेती हूँ—अब मैं भी तुमसे नहीं बोलूंगी—तुम्हारा परदा करूँगी !" रजनी ने खूब लंबा घूँघट निकाल दिया और एक कोने में जाकर बैठ रही !

इसबार दिलमें सैंकड़ों अफसोस के रहते हुये भी चन्द्रिका को हँसी आगई—चन्द्रिका ने-अपने मुँह से दोनों हाथ हटा लिये—और रजनी की तरफ चलदी !

"रजनी ! इस घूंघट में दबक कर बैठी हुई-तुम छोटी सी बहू कितनी प्यारी प्रतीत होती हो ! लो— मैंने भी अपना

घूँघट हटा दिया है—उठो बहन—संसार के सब दुःखों को भूलकर हम दोनों छाती से छाती लगाकर मिलें !"

रजनी एक दम खड़ी हो गई—घूँघट हटा दिया—और चन्द्रिका के गले में गल बहियाँ डालकर लिपट गई !

फिर दोनों बहनें चारपाई पर बैठकर बात चीत करने लगीं ! रजनी ने आज पहली ही बार चन्द्रिका के रूप को देखा ! चन्द्रिका इस समय मुरझाया हुवा फूल थी—किन्तु फिर भी उसके प्रत्येक अवयव से लावण्यता टपक रही थी ! रजनी टकटकी लगाये चान्द्रिका को देखने लगी। फिर एक दीर्घ आह भर कर बोली:—"उफ़ ! यह वसंत का गुलाब क्या इस तरह पैरों तले कुचलने के लिये तू ने पैदा किया था—हे ईश्वर !" चन्द्रिका की तरह रजनी का हृदय भी अत्यंत कोमल था ! रजनी की आंखों से आँसू छलक आये !

चन्द्रिका ने रजनी को अपनी छाती से लगाते हुये अत्यंत कोमलता से कहा—"रजनी ! तुम क्यों अफसोस करती हो, जो हमारे भाग्य में बदा है वह अवश्य होगाही !"

इसके बाद रजनी ने—चन्द्रिका के मना करते हुये भी—उसके ट्रङ्क से बढिया कपड़े निकाल डाले। फिर कमरे के बाहर ले जाकर—स्वयं अपने हाथ से वह चान्द्रिका के पांव धोने लगी ! चान्द्रिका ने रजनी का हाथ पकड़ लिया और कहा—"तुम मेरे पांव न छुओ बहन—मुझे इस तरह लज्जित न करो !"

रजनी हाथ छुड़ाकर मना करते हुवे भी चान्द्रिका के पांव धोती ही रही—उसने उत्तर में कहा:—"आप हमसे

बड़ी हो आप के पांव छूने का सौभाग्य फिर कब मुझे मिलेगा। तुम्हारे पांव कितने सुहावने हैं—दिल चाहता है इन्हें अपने बाहुपाश में हमेशा ही गूंथे रहूँ।"

"तुम तो बड़ी हटी हो रजनी--मुझ कब्बी को हंसिनी कह कर क्यों लज्जित करती हो बहिन—संसार तो मुझे कब्बी ही कह रहा है।"

रजनी ने चन्द्रिका की एक भी बात नहीं सुनी--हाथ पांव और फिर मुँह भी अपने हाथों से धोकर रूमाल से पोंछ डाले। फिर नये वस्त्र--जिसमें एक थी जरी की साड़ी--गुजराती फेशन बदन से चिपका हुवा पोलका और अंगूरी रेशम का लहँगा, इन्हें पहना कर—फिर कंघी लेकर रजनी--एक बड़े कांच के सामने चन्द्रिका को बिठाकर बाल संवारने लगी। रजनी कलकत्ते की रहने वाली थी--बंगालिन लड़कियों के साथ खेलने में बचपन बीता था! बालों की सजावट में रजनी बहुत चतुर थी। चन्द्रिका के सघन काले केशों को बेंगालिन सुन्दरी की तरह सजादिये। चन्द्रिका के दोनों कान बालों से ढकचुके थे। सिर्फ हीरे के दोनों इयररिंग्ज़ काले केशों के नीचे झूलते हुये--काले बादलों में रह रह कर झिल मिलाते हुये तारों की तरह चमक रहे थे। नागिन--सी बलखाई हुई गुंथी चोटी उभरे हुये वक्षस्थल की बाजू में झूल रही थी। पूरी तरह सजकर जब चन्द्रिका तयार हो गई रजनी ने दोनों हाथों से चन्द्रिका के दोनों गालों पर हलकीसी चपत लगाते हुये कहा—" क्षमा करना बहन,

मेरी इस धृष्टता को—इस समय तुम एक अप्सरा-सी प्रतीत होती हो—यदि खुले मुँह इसी तरह तुम अपनी सास के सन्मुख चली जाओ—तो मुझे विश्वास है, वह तुम्हारे इस अद्वितीय रूप को देखकर तुमपर मुग्ध हुये बिना न रह सकेगी।"

चंद्रिका ने शर्म का घूँघट निकाल लिया—फिर रजनी के गालों पर एक मीठी चुटकी लेते हुये कहा—"मुझे अद्वितीय रूपवती कहने वाली मयंकमुखी! सहस्रों गुलाब-सी कोमल कपोल युक्त—शरद पूर्णिमा के चाँद सी निर्मल रूप-सुधा बरसाने वाली—इस छोटे से मुखड़े पर विराजने वाली अनुपम रूप छटा को भी, कभी आइने में देखा है या नहीं! मैं कहती हूँ बहिन, तुम इस अद्वितीय शब्द को किसी दूसरे के लिये उपयोग करना भूल जाओगी!!"

रजनी इस बार झेंप गई—उसकी मुसकान युक्त सौंदर्य्य प्रदीपिका नीचे झुक गई!

समय बहुत हो चुका था—रजनी को खयाल आते ही वह चौंक उठी। चलो बहन—छोड़ो इस फालतू बकवाद को कहीं बना बनाया मामला न बिगड़ जाय! तुम जातेही सास के पांव पकड़ लेना—मैं उनके मुँह से जब तक क्षमा नहीं करवादूं—तुम पाँव नहीं छोड़ना! दोनों मैत्री बहनें नीचे उतर आईं। रजनी हँस रही थी पर चन्द्रिका भय से कांप रही थी!

डरते डरते चंद्रिका आगे बढ़ी—और बिस्तर पर बैठी—

हुई सास के दोनों पाँव पकड़कर उसने मस्तक झुका दिया। किंतु सास ने मुँह फेर लिया पाँव अलग हटाना चाहा पर चंद्रिका ने नहीं छोड़ा। इसी समय रजनीकांत भीतर आगये। चंद्रकांत बाबू दूर ही खड़े खड़े देखते रहे। चंद्रिका की सास को मुँह फिराये देखकर—रजनी भी उसके चरणों में गिर पड़ी और बोली:-"माता मेरी बहन को क्षमा कर दो मैं आपके पैरों पड़ती हूं।" उसी क्षण रजनीकांत बाबू भी चरणों में गिर पड़े और बोले:—"माताजी भोजी को क्षमा कर दीजियेगा, वह आगे कभी आपकी आज्ञा का उलंघन नहीं करेगी।"

सास ने कहा:— छिः छिः रजनीकांत! तुम यह क्या लड़कपन कर रहे हो दूसरी तरफ रजनी को भी उठा लिया—और कहा—"बेटी, क्या तुम पगली तो नहीं हो गई हो!"

रजनीकांत:—माताजी—जिस तरह हमें उठाया-भौजी को भी उठाकर गले लगालो--देखो, वह सिसक-सिसक कर रो रही है। उसे उठालो मां-अधिक अपमान उस दुःखिया का न करो।

चन्द्रिका ने रो रो कर सास के दोनों पाँव आँसुओं से धो दिये। चन्द्रकांत बाबू भी सामने खड़े हुये मां के कठोर हृदय को देखकर रो पड़े—टप टप आँसुओं की धारा उनकी आँखों से बरस उठी। इसी समय मां की नजर रोते हुए चन्द्रकांत पर पड़ी।" चंदू! चंदू! तू क्यों रो रहा है मेरे लाल?" कहते हुये मां दौड़ पड़ी—चन्द्रकांत बाबू को गले से लगा लिया।

"मां—मां उस दुःखिनी को क्षमा कर दो।"—यह कहते हुये चन्द्रकांत बाबू की हिचकियां बँध गई—वे अधिक नहीं बोल सके। स्वामी की आँखों में आँसू देखकर चन्द्रिका की आँखों से अश्रुधारायें और भी वेग से बहने लगीं।

चन्द्रकांत बाबू का रोना, मां से भी सहन नहीं हो सका। "मत रो चंदू ले, तू जिसमें सुखी रहे वही करने को मैं तैयार हूँ।" मां ने दौड़ कर "चंद्रिका को उठा लिया और गले से लगाली।" चन्द्रकांत बाबू अब तक रो रहे थे। मांने फिर कहा:— मत रो चन्दू! मैं तेरा रोना नहीं सह सकती—यह कहते हुये मां भी रोने लगी।

चन्द्रकांत:—यदि आप मुझे सच्चे दिल से प्यार करती हो तो—आपकी इस दुःखिया बहू को भी सच्चे दिल से एक बार क्षमा कर दो। जो अपराध यह करे उसकी सख्त से सख्त सज़ा दो! फिर आपका यह कभी अपमान करेगी तो मैं भी इसे शिक्षा दूंगा। गलती मनुष्य से होती ही रहती है। गलती का उपाय दंड है। आप इसकी भूल पर जो चाहे उचित दंड दो मैं कभी दुःखी नहीं होऊँगा।

इसी समय सास ने बहू के सिर पर हाथ रख कर कहा:—"मैं तुझे सच्चे दिल से क्षमा करती हूं।" चन्द्रिका ने सास को तीन बार प्रणाम किया—आँसू पोंछ डाले और रजनी सहित ऊपर कमरे में चल दी। ऊपर जाकर रजनी ने नोकरानी के हाथ कहला भेजा—"आज की रात मैं बड़ी दीदी के पासही रहूंगी।"

रजनीकांत बाबू इस उत्तर को सुनकर न मालूम क्यों मुसकरा उठे। उनको हँसते हुये, विस्मय भरी आँखों से चन्द्रकांत बाबू ने भी देखा। थोडी देर तक बातचीत करने के बाद ही रजनीकांत—"माताजी प्रणाम"— जाता हूं। कहते हुये चल दिये।

चन्द्रकांत बाबू भी नीचे ही एक चारपाई पर लेट गये। नोकरानी ने ऊपर जाकर रजनीकांत बाबू का हँस कर सहानुभूति दरशाना ज्यों का त्यों दरशा दिया। चन्द्रिका ने व्यंग पूर्वक कहा:—बहन रजनी! तुम चली क्यों नहीं जाती—उन्हें तुम्हारे बिना नींद कैसे आवेगी—तबही तो वे कुछ नहीं बोले और हंसकर चल दिये।

किंतु इस व्यंग से रजनी तनिक भी नहीं हँसी—उसका ध्यान ओरही तरफ था। दिल में खयाल आया:—रात में अकेले एक कमरे से दूसरे कमरे तक वे नहीं जा सकते। नाटक देखकर वापस आते हैं तो महमूद पहुंचाने आता है—फिर आज रात भर अकेले उस घर में किस तरह काटने पर राजी हो गये! रजनी संदेह के बादलों में घिर गई।

इसी समय चन्द्रिका ने पुनः व्यंग पूर्वक कहा:—अकेली डरती हो तो नौकरानी के साथ पहुंचा दूँ।

नेहा बहन, मेरा ध्यान कुछ ओरही तरफ—था। वे बडी बेफिक्र नींद से सोते हैं—मुझे यही फिक्र हो रही थी कि आते समय जेवरों की तिजोरी बंद करके आई थी या नहीं! पर अब चिंता की कोई बात नहीं रही—मुझे अच्छी

तरह मालूम है—आते समय बंद करके ही आई थी। इस तरह बात बनाकर रजनी ने विषय बदल दिया।

पश्चात् दोनों बहनें एकही चारपाई पर सो रहीं। न मालूम क्यों दोनों को आज सारी रात नींदही नहीं आई

कभी चन्द्रिका पुकारती "रजनी" क्या नींद आगई और कभी रजनी पुकारती "दीदी" क्या सो चुकी हो? किंतु दोनों तरफ से उत्तर मिलता "नहीं"।

रजनी चंद्रिका को नींद न आने का कारण समझ चुकी थी और वह दिलही दिल—रात भर यहां व्यर्थ रहकर—चंद्रिका को पति से अलग रखने की भूल पर पश्चाताप कर रही थी। पर चन्द्रिका—"रजनी" को नींद न आने का कारण पूरी तरह नहीं समझ सकी थी। वह भी रजनी की तरह—"पति-वियोग में नींद नहीं आती होगी"—यह सोचकर रजनी को व्यर्थ रखा—इस भूल पर अफसोस कर रही थी। पर वास्तव में रजनी के नींद नहीं आने का यह कारण नहीं था। उसके हृदयपटल पर सन्देह के भयंकर काले काले बादल मँडरा रहे थे। यह सारी रात दोनों मैत्री सखियों ने तडपते हुए बिताई।

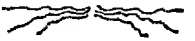

८

रात के ग्यारह बजे होंगे—रजनीकांत बाबू एक अंग्रेजी नावेल निकाल कर उसके पन्ने इधर उधर उलटने लगे। कमरा काफी सजा हुआ था—रोशनी भी चम चम थी। सामने रखी हुई टेबल पर मन को प्रसन्न करने वाली सबही चीजें काफी चतुराई से सजी पड़ी थीं। सिर्फ फूलों का गुल-

दस्ता मुरझा चुका था—चुँकि गुलदस्ते को सजाने वाली नायिका आज घर में नहीं थी।

रजनीकांत बाबू को भी, रजनी बिना आज की अत्यन्त सुन्दर सुहावनी रजनी भयावनी प्रतीत हुई। फिर मेहमूद का खयाल आया—हमेशा वह मेरी इच्छा के विरुद्ध कभी मुझे छोड़ कर नहीं चल देता था—फिर आज मेरी लाख कोशिश करने पर भी वह क्यों नहीं रुका। कहता था-अब्बा की तबियत ठीक नहीं है—सो वे तो कई महीनों से बीमार हैंही—यह छोटा सा कारण बहाना नहीं तो क्या है। मैंने उसका हाथ पकड़ कर बैठाना चाहा—पर वह नहीं रुका। हमेशा कहा करता था 'समय आने दो' शहर के कई रमणीय स्थानों की सैर कराऊँगा। फिर आज से बढ़ कर उपयुक्त समय कब मिलेगा। पर न मालूम क्यों आज मेरी एक भी बात उसने नहीं सुनी और चल दिया।

इसी समय रजनीकांत बाबू को मेहमूद के दिये हुये पत्र की याद हो आई—वे शीघ्रता से उठ खड़े हुये, सामने टँगे हुये कोट की जेब से पत्र निकाल कर पढ़ने लगे।

मेरे प्यारे दिल!

सोचती थी पहले आपकी तरफ से कोई पत्र मिलेगा तब बड़ी शान के साथ मुँह फुला कर उत्तर लिखूँगी।

सुनती थी पुरुषों का हृदय बड़ा जल्द पिघलने वाला होता है—पर आपको, आँख मिचौनी के खेल खेलकर भी आकर्षित नहीं कर सकी। यह आपकी जीत और मेरी हार

नहीं तो क्या है !

कितनी बार मैंने अपने दिल की बेचैनी ज़ाहिर करने के इरादे से, जब आप अब्बा से बातचीत किया करते थे—रूमाल से मैंने अपने आँसू पोंछे होंगे—पर आप मेरी मूक वेदना नहीं समझ सके यह मेरा दुर्भाग्य नहीं तो क्या है।

सोचती थी—निकाह नहीं करूँगी-अब्बा से सफा ना कर दूंगी—आपको देखकर ही ज़िंदगी बिता लूँगी। पर आप हिंदू ठहरे—फिर आपके दिल में क्या है वह भी नहीं जान सकी थी—मैं लाचार होकर बैठ रही और अब्बा ने मुझे निकाह के बुरके में ढकेल दिया।

दिल में डर था—कहीं मैं पत्र लिखूँ और आप मेरे अब्बा को बता दें। इसी डर से कई बार पत्र लिखने का दिल हुआ पर नहीं लिख सकी। एक दो बार तो पत्र लिख भी लिया था—पर शर्म और डर ने मुझे नहीं देने दिया।

मैं आपको दिल की तह में प्यार करती हूं—दिल एक है यदि हजार होते तो हजार से प्यार करती। पर यह मेरी एक तरफ़ी मोहब्बत—मेरा पागलपन नहीं तो और क्या है।

कई बार आप भी मुझे देखा करते थे—तब शर्म से मुसकरा कर मैं भाग जाती थी। मैं भागती इसलिये थी कि जिससे आपके दिल में मेरी मोहब्बत बेचैनी पैदा करदे-और इस तरह आपके दिल में क्या है, यह जान सकूँ। मैं आपके सामने से तो भाग जाती थी—पर फिर छिप कर किंवाड़ की दराज़ से आप पर क्या बीतती है यह देखने के लिये बहुत

देर तक आपकी तरफ झांका करती थी—पर आप तो मेरे जाने के बाद दुबारा दरवाज़े की तरफ तक नज़र उठाकर नहीं देखते थे।

मुझे आपके इस रंग को देख कर दिल में—काफ़ी अफ़सोस होता था। जब तक आप बैठे रहते तब तक तो देखा करती जब आप चले जाते तब आपकी इस निष्ठुरता पर अपने कमरे में जाकर रोती थी। कई बार आपके सामने भी मैंने रूमाल से आँसू पोंछे—पर आप शायद मेरे दिल की बात नहीं समझ सके। आपकी इस निष्ठुरता ने ही मेरा दिल तोड़ दिया—और मैं जबरन अपना दिल किसी बेगाने को मुफ्तिया देने के लिये मजबूर कर दीगई।

निकाह होगई—मैं पराई हो चुकी—पर दिल अब भी पराया होने को तैयार नहीं है।

आज एकाएक—मेहमूद ने दोसौ रुपये मुझसे मांगे—पर मेरे पास कहांसे आये। इसी समय इन रुपयों के बहाने आप से मेरे दिल पर बीती हुई कहानी सुनाने की अक्ल याद होआई और मैंने मेहमूद को—दिल कड़ा करके कह दिया—तुम अपने मित्र से क्यों नहीं मांग लेते! मेहमूद ने आँखों में आंसूभरके कहा:—मुझे मित्रके कई हज़ार रुपये देना हैं—मैं किस नाक से और रुपये उनसे मांगूँ। इसी समय मेरा दिल काबू में नहीं रहा। आपसे पत्र व्यवहार होगा—इस आनन्द की कल्पना कर मैं पगली हो उठी—मैंने बिना रुके मेहमूद से कह दिया:—क्या मैं पत्र लिख दूं—मुझे उम्मीद है वे पत्र पाकर तुझे जरूर दे

देंगे। मेहमूद प्रसन्न हो उठा—वह अपनी टोपी मेरे कदमों में रख कर कहने लगा:—मेरी इज्ज़त तुम्हारे हाथ है बहन! अगर कल तक रुपये मुझे नहीं मिलेंगे तो मैं ज़हर खा लूंगा।

मैंने बहुत पूछा, पर रुपये क्यों चाहिये यह बात मेहमूद ने नहीं बताई।

मेरे दिल—मैं क्या उम्मीद करूँ, कि, दो सौ रुपये देकर आप मेरे भाई की जान बचायेंगे—और मेरे इस बेचैन दिल को—कहीं न कहीं आपके दिल में—नहीं तो कदमों ही में थोड़ी सी जगह देंगे।

आपकी—
"नर्गिश"

पत्र पढ़ कर रजनीकान्त बाबू के आनन्द का पारावार नहीं रहा। जिस "नर्गिश" को पाने के लिये रजनीकान्त बाबू ने वकालत को छोड़ दिया—मेहमूद को हज़ारों रुपया कर्ज दे दिया—पर उसे न पहचान सके—उसके दिल का पता नहीं पासके।

वही "नर्गिश" रजनीकांत बाबू को प्यार करती है—इससे बढ़ कर खुशी और क्या हो सकती थी।

खुशी के साथ ही—रजनी बाबू को पश्चाताप भी हुवा—"कितनी बड़ी गलती की—मैंने पत्र को अभी तक नहीं पढ़ा—और इसीलिये मेहमूद रुपये न पाकर उदास यहं से लौट गया।

तब क्या करूँ रुपये मेहमूद के घर जाकर दे दूं—हां—यही उचित होगा।

रजनी बाबू ने शीघ्रता से तिजोरी खोल कर दो सौ रुपये के दो नोट निकाल लिये और तिजोरी बन्द करदी। ये दो सौ रुपये कलही बैंक से सूद के रूप में आये थे। महीने भर का घर का खर्च इन्हीं रुपयों से चलने वाला था। पर इस समय रजनी बाबू की विचारशक्ति—विलीन हो चुकी थी।

उन्होंने कपड़े पहन लिये—मोजे और जूते भी चढ़ा लिये—फिर बिजली का टार्च निकाल कर तयार हो गये। घड़ी में देखा तो साढ़े बारह बज रहे थे। इतनी रात्रि में घर से अकेले बाहर जाना—रजनीकांत बाबू की ताकत के बाहर की बात थी। उन्होंने कमरे का दरवाजा खोल दिया—पर बाहर कदम रखने की हिम्मत नहीं हुई। बड़ी देर तक एक कदम बाहर और एक कमरे के भीतर इसी दशा में भयभीत होकर खड़े रहे।

इसी समय नीचे के दरवाज़े का किंवाड़ किसी ने खटखटाया। रजनी बाबू भय से कांप उठे—दिल में धड़कन मच गई—ज़बान बन्द हो गई—आंखों के आगे चक्कर सा आगया! यदि किंवाड़ को नहीं पकड़ा होता तो सीढ़ियों स लुढ़कते हुये एक मंजिल नीचे के दरवाज़े से जाकर टकराते। इसी समय कांच की चूड़ियों के बजने की आवाज़ सुनाई दी और तब रजनी बाबू की जान में जान आई। उन्हें खयाल आया शायद रजनी ही आगई हो। अब दिल में भय नहीं रहा—पर भय के स्थान में नर्गिश को रुपये न

पहुँचा सकने का अफसोस भीषण रूप से छागया।

रजनी बाबू डरपोक थे—यह बात रजनी भी अच्छी तरह जानती थी। डरने की आदत से रजनी बाबू स्वयं दिल में बड़े लज्जित थे—पर करते क्या—रात आई और उनका काल आया।

पर आज रजनी को अपनी शान बताने के इरादे से—वे बड़ी अकड़ के साथ जूतों को खटखटाते हुये—तेज़ी से सीढ़ियां उतर गये और किंवाड़ खोल दिया।

किंवाड़ खोलते ही—एक सफेद बुरकापोश शक्ल को देखकर रजनी बाबू भय से कांप उठे। अरे-दौड़ो-बचाओ-घर में डाकू घुस पड़ा है—रजनी बाबू दबी ज़बान से चिल्ला उठे! पर आवाज़ भय की वजह से जोर की नहीं निकल पाई थी। इसलिये किसी ने उस चिल्लाहट को नहीं सुना। इसी समय बुरके में से—एक अत्यन्त कमनीय पर—डरी हुई ज़बान से आवाज़ आई—"ठहरिये साहब—आप यह क्या कर रहे हैं—मैं डाकू नहीं हूँ—मुझे देखिये तो मैं कौन हूं।"

आवाज़ औरतसी थी—रजनी बाबू झेंप कर खड़े हो गये—उन्होंने उस घोर अँधियारे में भी उस बुरकापोश को कुछ कुछ पहचान लिया।

वह बुरकापोश कामिनी रजनी बाबू के कन्धे पर अपनी कलाई रख कर तेजी से ऊपर—प्रकाशवान कमरे में पहुंच गई।

हिन्दू मारशल-लॉ—

बुरका एकदम हट गया—रजनी बाबू की आंखों के सामने चाँद चमक उठा—उनकी आँखें उस ईद के चाँद को देखकर चौंधिया गईं।

"कौन-कौन! जिसके लिये मैं पागल था-संसार मुझे पागलखाना दिखाता था-वह मेरे हृदय-मन्दिर की ज्योत्स्ना...."नर्गिश"।

"हां-हां-मेरे दर्दे ज़िगर के मरहम-मेरे अधखिले गुलशन के बाग़बां-मैं वही वर्षों से आपके हिज्र में मरने-वाली-इन क़दमों की दासी-"नर्गिश" हूं।"

१

"नहीं मैं अपने घरसे बिना कुछ कलेवा कराये इस तरह भूखी न जाने दूंगी"—कहते हुये चन्द्रिका ने "रजनी" का हाथ पकड़ लिया।

नहीं दीदी—मैं सुबह सुबह कुछ नहीं खाती हूं—कलेवा करने की मुझे आदत ही नहीं है। मुझे जाने दो—सूर्य्योदय

हो चुका है। वहां जाकर मुझे दूध चाह की तयारी करना है---उन्हें भूख बिलकुल सहन नहीं होती है। वे·······...”

“ हां—आगे कहो ना रजनी--वे···कह करही क्यों रुक गई ? शायद वे तुम्हारे विना कुछ न खाते होंगे—या तुम उनके विना कुछ नहीं खा सकती होगी ?”

रजनी का मुख लज्जा से झुक गया—वह कुछ नहीं बोली इसी समय चंद्रिका ने एक छोटी सी पोटली रजनी को देते हुये कहाः---“ अच्छा जाओ बहन---मैं तुम्हारे व्रत की महत्ता को अब समझ चुकी हूं—तुम अपने घर जाकर ही मेरी तरफ से कलेवा कर लेना।”

रजनी चंद्रिका को प्रणाम करती हुई शीघ्रता से एक नौकरानी को साथ लेकर घर से बाहर हो गई। चंद्रिका भी नीचे उतर कर चौके चूल्हे के काम में लग गई। चंद्रिका कल की इतनी भारी घटना को भी आज भूल चुकी थी—वह हमेशा की तरह घर के काम में जुट गई।

रजनी अपने घर पहुंची—नीचे के किंवाड खुले थे। रजनी ऊपर की तरफ सीढ़ियां चढ़ने लगी—नोकरानी फाटक से ही पहुंचा कर लौट गई।

ऊपर रजनी बाबू के कमरे के किंवाड़ बन्द थे—रजनी ने दराज में से हाथ डालकर भीतर की सांकल खोलली। उसने देखा—“ प्रियतम ”—सोये हुये थे।

रजनी ने सोचा—“ शायद नाटक देखने गये होंगे—इसी लिये अब तक नींद आ रही है। ”

रजनी शीघ्रता से घर के काम में जुट गई—मकान झाड़ बुहार करके रजनी ने नल के नीचे बैठ कर स्नान किया—फिर धुले हुये साफ वस्त्र पहन कर—गुलदस्ते के लिये गमलों में लगे हुये दरख्तों से रङ्ग बिरङ्गे फूल चुन डाले।

गुलदस्ता बनाकर—टेबल पर सजा दिया—फिर रजनी ने धीरे से चारपाई के सिरहाने खड़े होकर कहा:—"उठिये प्राणनाथ! दिन निकल आया है।"

रजनीकांत बाबू उठ बैठे—फिर आश्चर्य करते हुये बोले:—"आज कैसी गहरी नींद मुझे आई—आठ बज गये और अबतक मैं सोया ही था।"

रजनी ने मुसकरा कर कहा:— आप नाटक देखने गये होंगे—वहांसे देरी में आये होंगे—घर का फिकर तो आज आपको थाही नहीं! पर यह तो बताइये—आप अकेले इस घर में सोये कैसे होंगे?

रजनीकांत:—तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूं रजनी, मैं आज नाटक देखने तो क्या पर घर से बाहर तक नहीं गया! मेहमूद भी रातको आया था, पर सिर्फ पन्द्रह मिनट ठहर कर चला गया। फिर थोड़ी देर मैं अंग्रेजी नॉवेल के पन्ने उलटते रहा और नींद आगई। तुम रहती हो तब ही मुझे न मालूम क्यों घर में भय लगता है! आज तो मैं ऐसा निडर होकर सोया कि, सोने के बाद अबही जागा हूं। जिस तरह आज तुम मुझसे जुदा रही—इसी तरह यदि दस पांच बार

मुझे अकेले इस मकान में रहने का मौका आया तो मेरे दिल से भय सदा के लिये मिट जायगा।

पर आपको देखे बिना मेरा एक एक क्षण किस तरह बीतता है इसे मैं ही जानती हूँ। आज सारी रात मैं आपही की चिन्ता में सोई तक नहीं। पर मैं क्या करती—आपही ने मुझे वहां रखना मंजूर कर लिया था। पर मेरे दुःख सहने में आपका फायदा हुआ—यह जान कर मैं रात के सारे दुःखों को भूल गई हूँ। यदि आपका भय मेरे जुदा रहने से मिट सके तो मैं इस दुःख को सहर्ष सह लूँगी—कहते हुये रजनी ने आँखें नीची करलीं

रजनी के भोलेपन पर रजनीकांत बाबू हँस पड़े—कलाई पकड़ कर उसे अपनी तरफ उन्होंने खींच ली—फिर कलाई पर बंधी हुई पट्टी को देख कर वे बोलेः—क्या चोट बहुत गहरी लगी थी—मुझे दिखाओ उफ! मैंने क्रोध में आकर तुम पर यह कैसा अत्याचार किया—रजनी!

रजनी बाबू ने पट्टी खोल कर देखा—कलाई के ज़ख्म से अब तक खून चू रहा था। एक आह के साथ रजनी बाबू ने आँखें मूँदलीं।

अपने प्रियतम को बाहुपाश में गूँथते हूये रजनी ने कहा हृदयेश्वर! किसे जख्म हुवा है—मैं तो भली चंगी हूं! जिसे आप जख्म समझ कर अफसोस कर रहे हैं—वही तो मेरे आनन्द का कारण बना है!!

आपके चरणों की दासी ने हृदय में स्थान पा लिया—

इस सुख की तुलना किससे करूँ! क्या इन्द्र के इन्द्रासन से या कुबेर के अपरिमित धन से! नहीं यह सब तो इस सुख के आगे मुझे तुच्छ दिखाई देते हैं। फिर क्या कहूं—हां यही कह दूँ—इस सुख की तुलना संसार के किसी वैभव से नहीं हो सकती—स्वर्ग के किसी इन्द्रासन से नहीं हो सकती—कोष में कोई शब्द नहीं जो इस सुख की परिभाषा कर सके! यह सुख प्रकाश का पुञ्ज—हृदय मन्दिर का अकथनीय आनन्द हिमयाचल सा शीतल, प्रशांत—सागर-सा गम्भीर—और मेरू पर्वत सा विशाल है—यह सुख अद्वितीय है!

प्राणेश्वर! यदि आपके चरणों ने भी इस दासी के हृदय को अपनाया तो—ऐसे हज़ारों जख्मों से जर्जरित शरीर भी मुझे दुःखी नहीं बना सकेगा।

रजनीकांत बाबू ने रजनी के जख्म पर पट्टी बांधते हुये कहा:—तुमसी आज्ञाकारिणी स्त्री—रत्न को पाकर मैं अत्यन्त सुखी हुआ हूं। बहुत दिन से एक बात मैं तुमसे छुपा रहा था, पर आज मेरा सारा सन्देह दूर हो गया है। पर फिर भी मैं वचन लेना तुमसे उपयुक्त समझता हूं। प्रियतमे! मुझे विपत्ति से बचाने के लिये मेरी बात को मानोगी क्या? रजनी चौंक कर अलग खड़ी होगई—विपत्ति—मेरे देवता! वह कौन सी विपत्ति है? यदि मेरे प्राणों की बाजी लगाने पर भी वह विपत्ति टल सकेगी तो मैं तयार हूं। मैं आपकी दासी—मुझसे इतने दिन तक आपने इस विपत्ति की बात को क्यों छुपाई?

रजनीकांत ने गम्भीरता से मस्तक झुका कर कहा:—वह

दोसौ रुपया जो कल बैंक से आये थे मैंने मेहमूद को कर्ज़ दे दिये हैं—और बाज़ार में करीबन दो हजार रुपये का मुझ पर कर्ज़ चढ़ा हुआ है—मैं चाहता हूं बैंक में जो चालीस हज़ार रुपया है उसमें से निकाल लूँ।

रजनी को मेहमूद का नाम सुनकर हार्दिक दुःख हुवा—पर पति के भय से वह उस विषय में कुछ नहीं बोली। फिर कुछ देर चुप रह कर उसने कहाः—हृदयेश्वर! क्या यह मैं पूछ सकती हूं कि, ...

पूरा वाक्य रजनी नहीं बोल पाई थी कि, रजनीकांत ने "नहीं" कह कर उसे चौंका दिया।

अच्छा कुछ नहीं पूछूंगी! सारी संपत्ति के—इस सारे घर के—और मेरे—एक मात्र स्वामी आप हैं—आप को जो ठीक मालूम हो कीजिये।

इसी समय रजनी शीघ्रता से एक कमरे में गई—और एक बुक लेकर बाहर निकल आई। रजनी ने वह बुक रजनीकांत बाबू के सामने रखते हुये अत्यन्त नम्रता से कहाः—यह बैंक की बुक लीजिये आपको जितनी आवश्यकता हो रकम निकाल लीजियेगा।

रजनी बाबू ने बुक उठाकर जेब में रखली। रजनी कलेवा का सामान जुटाने रसोई घर में चली गई।

रजनी के इस अपूर्व साहस पर रजनीकांत को अत्यंत आश्चर्य हुआ।

चूंकि मरते समय रजनीकांत के पिता इस नकद रकम

को 'रजनी' के नाम से बैंक में जमाकर गये थे। इसके सिवाय रजनीकांत भी कई बार रजनी से कह चुके थे—बैंक की रकम तुम्हारी है, मैं उसे कभी नहीं छूऊँगा। तब क्या बैंक की रकम को छूना मुझे उचित है—रजनी दिल में क्या समझी होगी! वह भोली है, मैंने बातों में बनाकर उसे ठग लिया है! छिः छिः यह चुक उसे लौटा देनी चाहिये। स्त्री की रकम पर दाँव लगाना यह क्या मूछ वाले पुरुषों का कर्तव्य है! तब क्या करूँ? आखिर दो हज़ार रुपये कहां मिलेंगे? सोचा था—रजनी मुझे दो हजार राजी खुशी कभी नहीं देगी! मुझे धोखे से ताला तोड़ कर बैंक-बुक निकालना होगा—फिर ज़बरन उससे अधिकार पत्र लिखवाना होगा—पर यह-क्या इस उदार हृदया-देवीने यह कैसी विचित्र उदारताका परिचय दे डाला! आखिर "नर्गिश" मेरी होती कौन है—वह एक मुसलिम छोकरी है—मैं हिन्दू हूं। वह रूपवती है तो क्या हुआ—क्या रजनी उतनी सुन्दर नहीं है? रजनी तो उससे भी कहीं अधिक रूपवती है। फिर उसमें ऐसी क्या विशेषता है—जिस पर मैं पागल बना बैठा हूं! शान में आकर मैंने उसे दो हज़ार देने का वादा कर डाला। बेचारी रजनी को दस रुपये भी मैंने खुश होकर आज तक नहीं दिये। जो कुछ उसके पास था उसे उलटा मैं साफ कर चुका हूं। उस देवी ने आज तक मुझसे कभी एक ज़ेवर तक की मांग नहीं की! फिर उस "नर्गिश" ने दो हज़ार के सिवाय कई एक

ज़ेवर भी एक साथही मांग लिये—मैंने पालतू तोते की तरह सब कुछ स्वीकार कर लिया। आखिर वह पराई है—इस तरह लुक छिप कर वह इस रहस्य को कब तक छिपा सकेगी! पर वह कहती थी—रजनी बाबू—मेरे दिल को चीर कर देख लीजिये वहां भी आपही की तसवीर मिलेगी। क्या यह बात सच हो सकती है? तब क्या करूँ—यह बुक रजनी को वापस करदूं—"नर्गिश" को भूल जाऊँ? उसे कुछ न दूं?

इसी समय रजनी कलेवा की थाली लिये आ पहुँची। थाली टेबल पर रख दी और हमेशा की भांति पंखा झलने लगी। रजनी ने बाँये हाथ से एक कागज़ अपनी जेब से निकाला और वह भी टेबल पर रख दिया। रजनी बाबू ने कागज़ खोल कर पढ़ा—"वह बैंक के ४० हज़ार का अधिकारपत्र था।"

रजनी बाबू रजनी की उदारता देख कर अवाक से रह गये—उन्होंने विह्वल होकर कहा:—मुझे अधिक लज्जित न करो रजनी—यह सारी रकम का अधिकार पत्र मुझे नहीं चाहिये। यह दो हज़ार भी बतौर कर्ज़ के मैं तुमसे ले रहा हूं।

रजनी:—हृदयेश्वर! मुझे यह सम्पत्ति नहीं चाहिये—मेरी वास्तविक सम्पत्ति तो आप हैं। आपकी सेवा में यदि यह धन काम न आसका तो मेरे किस काम का रहेगा?

रजनी फिर पूर्ववत् पंखा झलने लगी—कलेवा कर चुकने पर रजनी पुनः रसोई घर में चली गई। रजनीकांत बाबू की ज़बान बंद होगई, वे कुछ नहीं बोल सके! रजनी की इस देवलीला को देखकर वे स्तब्ध से रहगये!!

१०

चंद्रकांत बाबू के घर का भूकंप यद्यपि आज कल शांत हो चुका था किंतु बर्फ से ढका हुआ ज्वालामुखी पर्वत भी कब फट पड़ेगा-इसे कौन बता सकता है। मेजिस्ट्रेट साहब दिलही दिल इस भय से हमेशा उदास रहा करते थे।

वैसे तो दस पांच खिड़कियां "चंद्रिका" को

हररोज़ सहनी पड़ती थीं-जैसे दाल में नमक कम होने पर सास का कह बैठना—कभी बाप के घर दाल भी पकाई थी—मिर्च अधिक हो जाने पर कह बैठना—निकल जा चौके से बाहर —जाकर आराम से गदीले पर सो रह—मैं बुढ़िया फिर किस काम में आनेवाली हूं, आदि।

पर चंद्रिका इन झिड़कियों से तनिक भी क्रोधित नहीं होती थी। कई बार तो वह इन व्यंगों को सुनकर उलटा हँस दिया करती थी।

करीबन छः महीने बीत गये पर उल्लेखनीय कोई घटना नहीं घटी।

इन्हीं दिनों चंद्रिका गर्भवती होगई। गर्भ धारण करने के सबही लक्षण प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। चंद्रिका का खाना पीना छूट गया—वह बड़ी मुश्किल से थोड़ा सा दाल भात खा कर ही रह जाती थी। फिर भी घर का सबही काम उसे करना पड़ता था। चंद्रिका को इन दिनों अधिक दुबली होते देख कर, कई बार मेजिस्ट्रेट साहब पूछते—"चंद्रिका" आजकल तुम कमजोर क्यों होती जा रही हो? किंतु चंद्रिका बिना कुछ उत्तर दिये ही हँस कर चल देती।

धीरे धीरे गर्भ बढ़ने लगा और मेजिस्ट्रेट साहब को भी सब कुछ मालूम होगया। उन्होंने कई एक स्त्रियोपयोगी पुस्तकें चंद्रिका को पढ़ने के लिये लादीं। साथही अधिक मेहनत न करना—अधिक रंज न करना—तेल मिर्च खटाई आदि तीक्ष्ण पदार्थ अधिक नहीं खाना। प्रमुदित और प्रसन्न रहना

आदि विषयों पर मेजिस्ट्रेट साहब चंद्रिका को हमेशा उपदेश दिया करते थे।

चंद्रिका ये सब बातें मुसकराते हुये—नीची नज़र किये—शर्म के साथ सुनती और सुखी होती थी।

आज कल दिन में भोजन के पश्चात चंद्रिका को नींद बहुत सताया करती थी। किंतु, सास के भय से—और पतिदेव के उपदेशानुसार दिन में अधिक सोना बुरा होता है—यह सोच कर—वह नहीं सोती थी। अगर ज्यादेही नींद सताती तो वह आँखो में सरसों का तेल लगा लिया करती थी। पुस्तकें, चंद्रकांत बाबू ने कई ला रखी थीं—पर दिन में सास के भय से पढ़ने की हिम्मत चंद्रिका में नहीं थी। रात्रि में अपने कमरे में जाकर ही चंद्रिका कुछ पढ़ लिया करती थी। जब तक चंद्रकांत बाबू घर नहीं लौटते रात्रि मे वह पढ़ती ही रहती थी।

बरसाद के मौसिम की बात है—एक दिन दो पहर को चंद्रिका की सास घर से बाहर गई। धूप कड़ाके की निकल रही थी—चंद्रिका ने दो तीन दिन से रोज़ाना बरसाद होने की वजह से स्नान नहीं किया था। उसकी स्नान करने की इच्छा हुई। चौके के काम से निपटकर चंद्रिका ने खूब आनंद से स्नान किया। सास और पतिदेव के दैनिक कपड़े चंद्रिका पहले ही धोकर सुखा चुकी थी। चंद्रिका की सास जाते समय कह गई थी-कपड़े सूख जावें तो भीतर रखलेना

अपने कपड़े भी धोकर चंद्रिका ने सुखा दिये—आज वह

अत्यंत प्रसन्न थी। चंद्रिका ने स्नान के बाद नये वस्त्र पहने फिर बाल जमाकर वह पुस्तक पढ़ने लगी। दिन में आज पहली ही बार चंद्रिका पुस्तक पढ़ रही थी। बीच बीच में वह दरवाजे की तरफ भी देखती रहती थी।

इसी समय पश्चिम की तरफ से एक छोटी सी बदली निकल आई—थोड़ीही देर में वह चारों तरफ छागई—बरसाती हवा मन्द मन्द गति से बहने लगी। चंद्रिका खिड़की के पास खुले मुँह प्रसन्नता से पुस्तक पढ़ रही थी। पुस्तक पढ़ने में वह इतनी लवलीन थी कि, पुस्तक के बाहर क्या हो रहा है इसका तनिक भी खयाल उसे नहीं था।

इसी समय मलय समीर की एक तेज लहर खिड़की के किवाड़ को खटखटाते हुये मकान में घुसी और चंद्रिका के वसन्त गुलाब से नव विकसित मुखड़े को और भी प्रफुल्लित करके लौट गई। हाथ में पुस्तक थी—पर चंद्रिका की आँखें झपने लगी।

इसी समय झिरमिरी बुंदें पानी की बरसने लगीं—और चन्द्रिका को धीरे धीरे उस ठंडी हवा ने गाढ़ निद्रा में तल्लीन कर दिया। पुस्तक हाथही में रह गई—चंद्रिका खिड़की की चौखट पर ही मस्तक टेककर सो गई।

इसी समय—बिजलियां चमकने लगीं—बादल गरजने लगे और पानी मूसलधार बरसने लगा। किंतु, चंद्रिका की नींद नहीं टूटी। चंद्रिका आज बहुत प्रसन्न थी—उसकी निद्रा तल्लीन मुखमुद्रा से भी मधुर मुसकान प्रस्फुटित हो रही थी।

चंद्रिका खिड़की के भीतर थी—किंतु फिर भी बरसाती बूँदों ने उछल उछल कर उसके मस्तक को, रेशमी साड़ी सहित भिगो दिया था।

धीरे धीरे वर्षा कम हुई—कुछ थोड़ासा उघाड़ हुआ।

बिजलियों की कड़क और बादलों का भयङ्कर गर्जन सुन कर भी चंद्रिका की नींद नहीं टूटी थी—किंतु दरवाजे की मामूली सी खड़खड़ाहट ने चंद्रिका को गाढ़ निद्रा से चौंका दिया। चंद्रिका चर्र से आँखें खोलकर बैठ गई। सामने देखा तो-सास तेजी से आरही थी।

खिड़की से बाहर झांका तो आंगन गीला था—सिर भी भीग चुका था—चंद्रिका की जान सूख गई। सास शीघ्रता से आगे बढ़ कर चंद्रिका के सामने आकर खड़ी हो गई। सास ने खिड़की से बाहर झांका तो-सारे सूखे कपड़े पानी से टपक रहे थे।

ज्वालामुखी पहाड़ की तरह गर्ज कर सास ने चंद्रिका के हाथ से किताब छीनें कर फेंक दी। फिर भीषण रणचंडी का रूप धारण कर चंद्रिका के उन सजे हुये बालों को दोनों हाथों से नोचते हुये कहने लगी:—आग लगे तेरी नींद में—और तेरे इन नखरों में! जहाँ मैंने मुँह फेरा और तू बारह सिर की हो जाती है। मेरे सारे कपड़े भीग गये—अब क्या तेरी हड्डियाँ पहनूँगी! इसी समय सास ने निर्दयता पूर्वक उसकी कोमल कलाइयाँ, चिमटियाँ लेकर नोच डालीं—उसे जबरन घसीट कर बाहर गीली चांदनी में ढकेल दिया।

चंद्रिका इस एकाकी हमले को देखकर कुछ भी नहीं सोच सकी। उसे एक मात्र रोना सूझा।

इसी समय पानी फिर जोर से बरसने लगा—चंद्रिका डरते हुए मकान के भीतर आने लगी—किंतु पुनः सास ने इस बार उसे इतनी जोर से ढकेल दिया कि वह धड़ाम से उस चूनेकी सख्त चांदनी पर गिर पड़ी। पेट में बच्चा था उसे ऐसी असह्य चोट लगी कि—आधे घंटे तक उसे होश नहीं हुआ। उस मूसलधार पानी में वह बेहोश दुःखिया पड़ी पड़ी सिसकती रही पर उसे किसी ने नहीं उठाया।

उसी तरह गीले कपड़ों से लिपटी हुई चंद्रिका शीत से काँप रही थी—बीच बीच में "हाय राम मरी" कह कर वह कराह उठती थी। धीरे धीरे संध्या हुई—पर आज किसी ने चूल्हा नहीं सुलगाया—घर में चिराग तक नहीं जलाया!

ठीक आठ बजे चंद्रकांत बाबू घर आये। घर में अन्धकार को देखकर चंद्रकांत बाबू का माथा ठनका। उन्होंने घबराई हुई ज़बान से पुकारा—मां—मां—आज घर में अँधेरा क्यों है? पर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। चंद्रकांत बाबू का हृदय भय से कांप उठा—उन्होंने जेब से माचिस निकाल कर लैंप जलाया। सामने नज़र उठा कर देखा तो रसोई घर के फाटक पर बैठी हुई मां आँसू बहा रही है। चंद्रकांत बाबू को देखकर वे आँसू धारा प्रवाही हो गये।

चंद्रकांत बाबू ने तेजी से मां के सामने खड़े होकर विस्मय भरी ज़बान से पूछाः—आखिर कहो भी—रो क्यों रही हो। तुम्हें किसने दुःख पहुँचाया है, मां ?

मां ने रोते हुये—पर कड़ी ज़बान से कहाः—मुझे दुःख और कौन पहुँचावेगा—वही आपकी रानी साहेबा—वही मेरे खून की प्यासी जान पड़ती है। अच्छी शिक्षा दी—खूब किताबें पढ़वा कर होशियार बना दी। पर याद रख चंदू मेरी बात को अपनी डायरी में लिख ले—यह बहू एक दिन तुझे भी ऐसा अपमानित करेगी—कि तू संसार में मुँह दिखाने काबिल नहीं रहेगा !

इतना कह कर मां फिर रोने लगी।

चंद्रकांत बाबू ने रूमाल से मां के आंसू पोंछते हुवे फिर पूछाः—उसने तुम्हारा क्या अपमान किया है मां—तुम कहो मैं आज उसे तुम्हारे सामने शिक्षा दूँगा।

चंद्रिका बाहर सिसक सिसक कर रो रही थी—पर अब भी सास के डर से मकान के भीतर आने का साहस उसमें नहीं था। सारी बातें वह सुन रही थी। भगवान यह क्या! आज हृदयेश्वरभी मुझे सजा देंगे! हां—ठीकही तो है—उनकी सज़ा मैं अवश्य सहूँगी—मैंने आज उनकी आज्ञा भंग की है। दिनको सोना उन्होंने बुरा बताया था—फिर मैं क्यों कर सो गई ? अवश्यही मैं अपराधी हूं!

इधर मां ने अपनी कथा शुरु की। मैं आज बरसात को खुली जानकर कई दिनों बाद भाई के घर मिलने गई

थी। पीछे घर की निगरानी रखने की सूचना बहू को देगई थी। मेरे जातेही—इसने स्नान किया मालूम होता है; क्योंकि, जब मैं वापस आई तब इतर तेल से घर महक रहा था। बाई साहब वेश्या की तरह सजकर—खुले मुँह किताब हाथ में लिये नींद ले रही थी। बाहर दिन भर के सूखे कपड़े टँगे थे। मूसलाधार पानी बरसा, सब कपड़े भीग गये पर बहू की नींद नहीं खुली! मैं घर में आगई पर नींद नहीं खुली—मान लो अगर पीछे से कोई बदमाश घर में घुस कर सब ज़ेवर निकाल ले जाता—या इस चमकचन्दा पर वारदात कर बैठता तो आज मैं किसे मुँह दिखाने लायक रहती बेटा! आखिर मैं मट्टी की नहीं थी—मैंने गुस्से में आकर सिर्फ इतना सा कहा—"सारे कपड़े भिगो दिये—अब क्या तुम्हारी हड्डियां पहनूँगी"—बस मेरा इतना-सा कहना था—कि मुँह फुलाकर बरसते पानी में बाहर जा बैठी और अब तक बैठी हुई है।

चंद्रकांत बाबू मां की बात पर विश्वास कर गये—उन्हें भी क्रोध हो आया।

इसी समय मां ने फिर कहा:—अगर यह अकेली होती तो भले ही चार दिन तक पानी में बैठी रहो, मैं अफसोस नहीं करती—पर हत्यारी के पेट में बच्चा जो है—उसे बच्चे तक की परवाह नहीं है! हाय—मैं क्या करूँ उसे मनाने के लिये क्या अपना सिर फोड़ डालूँ। बस इतना कह कर मां जोर जोर से रोने लगी!

चंद्रिका चौंक पड़ी—यह क्या बाहर बैठने का झूठा दोष मुझ पर मढ़ा जा रहा है। किंतु अबोला चंद्रिका समाज की प्रथानुसार पति और सास के आगे बोल नहीं सकती थी।

इसी समय चंद्रकांत बाबू चांदनी के दरवाजे पर खड़े हो गये और क्रोधित आँखों से चंद्रिका को देखने लगे। चंद्रिका भीगे कपड़ों में सिमटी हुई कांप रही थी! उसके गीले घूंघट में से रोती हुई आँखें अच्छी तरह दीख रही थीं। चंद्रिका भयभीत होकर खड़ी थी पर, चंद्रकांत बाबू ने सोचा—वह ज़िद से खड़ी है—उसे मेरे क्रोध का भी भय नहीं है।

चंद्रिका, आखिर मेरी सारी शिक्षाओं पर तूने आज पानी फेरही दिया। मैं सामने खड़ा हूँ फिर भी तुझे शर्म नहीं आती, अच्छा तो ठहर मैं भी आज तुझे शिक्षा दिये बिना नहीं हटूंगा। चंद्रिका अपने हृदयेश्वर के मुँह से ये शब्द सुनने के पहले ही चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़ी; पर चंद्रकांत बाबूने, यह भी मकान के भीतर नहीं आने का बहाना, मात्र समझा। उन्होंने आगे बढ़ कर चंद्रिका की कलाई पकड़ ली और घसीट कर मकान के भीतर ला पटकी।

चंद्रकांत बाबू फिर यहां एक क्षण भी नहीं ठहरे। मां कहती ही रही—चंदू बाजार से पूरी लाकर खाले—पर चन्द्रकान्त बाबू बिना कुछ बोले ऊपर अपने कमरे में जाकर

पड़ रहे।

उस दिन किसी ने कुछ नहीं खाया—चन्द्रिका बड़ी रात तक उन्हीं गीले कपड़ों में लिपटी रोती रही। रात के दस बज गये इसी समय चंद्रिका उठ बैठी—फिर सोचने लगी—मैंने जो पति आज्ञा भंग की उसी की मुझे यह सज़ा मिली है—अब यहाँ पड़ी रह कर क्यों समय बिताऊँ। यदि प्रियतम मुझे सजा देकर भी सन्तुष्ट नहीं हुये हों तो अपने अपराध की और अधिक सज़ा उनसे क्यों न मांग लूँ। ठीक है—मैं यहां एक क्षण भी अब बेकार न बैठूँगी—जो अपराध मुझसे हुआ है उसकी पूरी सज़ा पाकर ही चैन लूँगी।

चंद्रिका उन्हीं भीगे कपड़ों से—ऊपर चंद्रकांत बाबू के कमरे की तरफ़ चली गयी—फिर किंवाड़ खोल कर भीतर झांका। चंद्रकांत बाबू—अब भी सोये नहीं थे—वे चिराग को सामने रख कर खिड़की में बैठे हुए विचारमग्न थे। चंद्रिका को देखते ही उन्होंने मुँह फेर लिया।

चंद्रिका ने गंभीरता पूर्वक कहा:—मैंने आपका अपराध किया है नाथ,—मुझे भारीसे भारी सज़ा दीजिये—मैं सह लूँगी! आप से पाई हुई सज़ा मुझे अवश्य सुखी कर सकेगी किन्तु, मेरे अपराध से आपके हृदय में क्लेश हो, यह मैं नहीं देख सकती!

चंद्रकांत बाबू ने कड़ी ज़बान से कहा:—मैं कुछ नहीं सुनना चाहता—कमरे से बाहर निकल जाओ!

चंद्रिकाः—नहीं, मैं सजा लेने आई हूँ—बिना सजा दिये मुझे इस तरह न दुतकारिये।

किंतु चंद्रकांत बाबू क्रोध में कुछ नहीं सोच सके—उन्होंने उठकर चंद्रिका को ढकेल दिया—पर वह बाहर नहीं गिरते हुए कमरे के भीतर ही धड़ाम से गिर पड़ी। चंद्राकांत बाबू पुनः घसीट कर उसे कमरे के बाहर निकालने लगे।

प्रियतमकी इस कठोरता पर चंद्रिका रो पड़ी—आँसू बहाते हुये उसने कहाः—मुझे सजा दो प्राणेश्वर, पर आपके चरणों से जुदा न करो! आप अपनी माता की एक तरफी शिकायत सुन कर मुझ दुःखिया पर अन्याय न करो। आप मेजिस्ट्रेट हो—क्या इसीतरह एक तरफी बात सुनकर आप फैसला अदालत में भी कर सकते हो?

चंद्रकांत बाबू का क्रोध एक दम काफूर हो गया—वे चंद्रिका को वहीं छोड़ कर—सामने चारपाई पर बैठ गये। चंद्रिका दोनों हाथ जोड़ कर घुटने टेक कर सच्ची दुःख कथा सुनाने लगी। उसने सारी कहानी ज्यों की ज्यों सुना दी। सुनते सुनते चंद्रकांत बाबू की आँखों के आगे अँधेरी छागई। प्रिये—प्रिये—कहते हुये उन्होंने चंद्रिका को विव्हल होकर अपने हृदय से लगा लिया।

उफ मैं कैसा न्यायाधीश हूँ—अपनी निरपराधिनी गृह लक्ष्मी पर सितम ढाहने वाला—मैं कैसा न्यायाधीश हूँ! चंद्रिका तुम देवी हो-तुमने इस अभागे हिंदू समाज में दुःख

सहने के लिये क्यों जन्म लिया प्रिये ! एक मेजिस्ट्रेट के घर में और न्याय की हत्या !!

चंद्रकांत बाबू का हृदय गद्गद् हो उठा—उन्होंने दृढ़ता से चंद्रिका को उन गीले वस्त्रों सहित बाहुपाश में गूँथलिया ! चंद्रिका भी—आह मेरे स्वामिन—मैंने आपको मना लिया—मैं कितनी सुखी हूँ ! मेरे नाथ यदि आप सुखी रहें तो मैं कांटों के बिस्तर पर सो कर भी हँसती रहूंगी !

११

समय बीतते देर नहीं लगती—रजनी भी गर्भवती थी—नियमित समय में रजनी, और चंद्रिका दोनों सखियों को दस दस दिन के फासले से सन्तान पैदा हुई। रजनी को पुत्र और चंद्रिका को कन्या।

रजनी बाबू ने तो खुशी में आकर दावत दे डाली—

पर मेजिस्ट्रेट साहब के घर एक चुहिया तक नहीं निमन्त्रित की गई। मेजिस्ट्रेट साहब की बहुत कुछ इच्छा थी, एक दावत मैं भी दे डालूँ। चूंकि अदालत के क्लर्क चपरासी और छोटे मोटे सबही ऑफिसर तक पहिली सन्तान होनेकी खुशी के उपलक्ष में एक प्रीति भोज लेने की इच्छा जाहिर कर रहे थे।

किन्तु इधर घर में दूसरा ही नाटक खेला जा रहा था। चंद्रिका को सुख से पेट भर भोजन तक नहीं नसीब था!

"लड़की पैदा हुई—" इस समाचार को सुनतेही—सास के दिल में जो थोड़ा बहुत स्थान बहू के लिये था, वह भी जाता रहा। जो नर्स जच्चा के लिए नियुक्त थी वह प्रतिदिन मेजिस्ट्रेट साहब से शिकायत करती—साहब! यह आपकी माता तो बड़ी बेरहम जान पड़ती है। मैं आज भोजन करने घर गई थी—किसी काम से देर हो गई—पीछे बहू को दिन भर किसी ने पानी तक नहीं पिलाया—जब मैं वापस आई—उसका गला सूख रहा था! ठीक समय पर रूखा सूखा भोजन तक नहीं मिलता है। अगर आप इसकी फिक्र नहीं लेंगे तो यह अभागिनी बे मौत मर जायगी।

मेजिस्ट्रेट साहब ने अत्यंत करुण ज़बान से कहा:—नर्स महोदया! कृपया आपही इसकी विशेष फिक्र लें—मैं आपको इस उपकार के लिए सन्तुष्ट कर दूंगा।

खैर किसी तरह ४० दिन पूरे हुये और चंद्रिका

को जच्चा की छूत से छुटकारा मिला। बालिका अत्यंत रूपवती थी—सूरत चंद्रिका से बिलकुल मिलती जुलती थी।

इधर सास से मिलने जुलने वाली औरतें जब पूछतीं आपकी बहू को क्या बालक हुवा है? तब सास मुँह सिकोड़ कर घृणित नज़रों से देखते हुये कहती:—सास की मौत की माला जपने वाली कलमुँही बहू को भी कभी पुत्र रत्न पैदा हो सकता है? कभी काग के पेट से भी हंस पैदा हुआ तुमने सुना है?

पूछने वालियों में जो सास के सिंहासन पर बैठने वाली बुढ़िया होती वे कहतीं:—सच है—पुत्र रत्न मिलना बड़े किस्मत की बात है! बेटा कहां रस्ते में पड़ा है जिसे हर कोई उठाले। किंतु कई एक दयालु-हृदया औरतें सास के इन मलीन विचारों को सुनकर कुपित हो उठती और कहतीं:— मां जी आप भी क्या बात करती हैं! लड़का ही पैदा करना यह क्या बहू के हाथ की बात है? इसमें बहू का क्या दोष है—जो आप उस बेचारी को कलमुँही-आदि कड़े शब्दों द्वारा दुःख पहुंचा रही हैं। आखिर लड़कियां पैदा होना बन्द हो जाय तो यह संसार ही न मिट जाय!

चंद्रिका इन व्यंगों को रात दिन सुना करती थी उसे पग पग पर अपमानित होने का मुहावरा सा हो गया था। किंतु फिर भी मानसिक वेदनाओं को वह कोमलांगी असह्य जान कर कभी कभी जी भर कर रो लिया करती थी। जब

हृदय का भार इस तरह रोने से हलका हो जाता—वह आँसू पोंछ कर पुनः घर के कार्य्य में लग जाया करती थी।

एक दिन रजनी बाबू के घर से भोजन का निमन्त्रण आया। चंद्रकांत बाबू को एक दिन पहले ही रजनीकांत बाबू ने निमन्त्रण भेजने के समाचार कह दिये थे। अस्तु आज वे अदालत जाने के पहलेही चंद्रिका को, खूब सज कर शान के साथ रजनी के घर जाने को कह गये थे। जाते जाते वह यह भी आदेश दे गये थे कि लल्ली को जरी का कीमती झबला पहना देना और तुम आज बंगालिन पोशाक, जो कलकत्ते से मँगवाई है वही पहनना।

चंद्रिका सब दुःखों को भूल कर स्वामी की आज्ञानुसार नहाने धोने और सजावट करने में लग गई।

स्नान के बाद चंद्रिका ने—पिरोज़ी रंग की रेशमी साड़ी और केवड़ाई अंडी की "सेमी" पहनी। फिर बंगालिन युवतियों सी बालों को सजा कर—कानों में हीरे के झूलने वाले कर्ण फूल पहन कर—चंद्रिका तयार होगई। लल्ली साल भर की हो चुकी थी—वह अच्छी तरह बैठ सकती थी। उसे भी चंद्रिका ने खूब सजाया।

आज पहली ही बार चंद्रिका ने बंगालिन पोषाक पहनी थी। पूरी तरह सज कर लल्ली को गोद में लिये वह आइने के सामने खड़ी होकर मुख मंडल की आभा देखने लगी। चंद्रिका उस रूप छटा को देख कर मुसकराये बिना नहीं रह सकी। चंद्रिका खुशी खुशी नीचे की तरफ सीढ़ियां उतरने लगी। किंतु ज्यों ज्यों सास का कमरा

समीप आने लगा—चंद्रिका के उस मधुर मुसकान युक्त मनोहर मुखड़े को—उदासीनता की स्याह चादर ढकने लगी। चंद्रिका ने घूँघट निकाल लिया—और सास को प्रणाम करके इशारे से जाने कि आज्ञा माँगी। किंतु सास चंद्रिका की इस शान को आनन्द की आँखों से नहीं देख सकी। वह व्यङ्ग पूर्वक बोली:—ऐसे बारीक कपड़े पहनने का जब शौक है तो यह बाम मात्र का लम्बा सा घूँघट निकालने की क्या जरूरत है! खुले मुँह फिरने ही में कौनसा हर्ज है—यह कहते हुये सास बिना कुछ उत्तर दिये रसोई घर में चली गई। चंद्रिका भी अधिक खड़ी नहीं रही। रजनी बाबू के यहां से बुलाने को आई हुई मेहरी बैठी थी। उसकी गोद में लल्ली को देकर उसके साथ धीरे से नीचे उतर गई। सास का इतनी कम कटाई से पेश आना चंद्रिका ने अपना सौभाग्य समझा। वह खुशी खुशी रजनी के घर चल दी।

आज चंद्रकांत बाबू भी अदालत से शीघ्रही रजनी बाबू के घर आगये थे। सन्ध्या समय दोनों मित्रों ने एक साथ स्नान किया—फिर ऊज्वल वस्त्र पहन कर दोनों मित्र बातें करने लगे।

इधर रजनी आज खुशी से फूली नहीं समाती थी। भोजन के लिये अनेक तरह के व्यञ्जन रजनी ने बनाये थे।

खुली छत पर—कीमती गलीचे और गदीलों की बिछायत रजनी ने पहले ही कर रखी थी। यहीं पर भोजन करने का स्थान निश्चित हुवा था।

चंद्रकांत बाबू जब से घर आये "कामिनीकांत को

गोदी से नहीं छोड रहे थे। "कामिनीकांत"—रजनी बाबू के एक वर्षीय पुत्र का नाम रखा गया था। इधर रजनी बाबू भी—लल्ली को हँस हँस कर खिला रहे थे। लल्ली का नाम "इन्दू" था।

भोजन की थालियाँ परोसी गईं—दोनों मित्र एक साथ भोजन करने बैठे। इधर दोनों बहनें एक साथ बड़े प्रेम से खाने बैठीं। इन्दू, रजनी बाबू की गोद में चुपचाप बैठी हँस रही थी। कभी कभी वह—मिठाई की तरफ अँगुली उठाकर बोल उठती—"माम—माम" तब रजनी बाबू बड़े प्यार से उसे छोटासा कौर खिला देते थे।

किंतु "कामिनीकांत" चुपचाप नहीं बैठा था—वह बड़ा चंचल था। चंद्रकांत बाबू उसे बार-बार पुचकार कर बड़े प्यार से गोद में बैठाते थे—पर एक जगह चुप बैठ रहना उसे नहीं सुहाता था—वह पुनः खिसक कर—थाली में हाथ मार बैठता था। थाली की सारी मिठाइयाँ जहाँ तक उसका हाथ पहुँचा, अपनी नन्हीं नन्हीं चपल अँगुलियों से "कामिनी" ने नोच डाली थीं। एक बार तो एक मिठाई का बड़ासा कौर उठा कर—कामिनी—चंद्रकांत बाबू के मुँह के पास अपना हाथ ले गया। कौर—बहुत बड़ा था पर चंद्रकांत बाबू प्रेम के वशीभूत वह कौर एकही बार में मुँह में रख गये। मुँह फुला-कर जब उस कौर को चंद्रकांत बाबू चबाने लगे—कामिनी बड़े जोर से खिल खिलाकर हँस पड़ा!

उधर दोनों बहनें—अपने स्वामियों को आनन्द तल्लीन

देखकर खूब प्रसन्न थीं। कभी कभी रजनी एक कौर उठाकर कहती—उसे छोड़ दो—दीदी—देखो यह कितना करारा समोसा है—यह कहते हुये चंद्रिका के मुँह में अपने हाथ का कौर खिलाकर प्रसन्न होती थी। इसी तरह चंद्रिका भी एक बड़ासा कौर रजनी की कलाई पकड़कर—ज़बरन मुँह में खिसका देती और फिर खूब हँसती थी। चंद्रिका की इस मजाक पर रजनी मुँह फुलाकर कहती—"कितना बड़ा कौर देती हो दीदी-मेरी तो सांस ही रुक जाती है!"

इसी समय—चंद्रिका ने धीरे से कहा—"कामिनी" रजनी को जरा इधर तो बुलाओ—क्या कामिनी उन्हीं का हो गया जो गोद से ही नहीं उतारते।

चंद्रिका बहुत धीरे बोली थी—पर रजनी बाबू ने सुन लिया। वे व्यंग पूर्वक बोले:—चेहरा तो घूँघट में छुपाही है—उसे कोई चुरा नहीं सकता—फिर क्या—आपकी आवाज के चोरी जाने का भय है—इसलिए आप इतनी धीरे से बोलीं!

रजनी हँस उठी—पर चंद्रिका शर्मा गई! इसी समय रजनीकांत चंद्रकांत बाबू से बोले:—भैया! भाभी मुझ से परदा करती है यह क्या आपकी आज्ञा से?

चंद्रकांत बाबू ने गंभीरता पूर्वक उत्तर दिया:—नहीं रजनी,—मैंने इन्हें तुम लोगों से परदा करने के फिजूल के रिवाज के बारे में कईबार समझाया है—पर नहीं कह सकता तुम्हारी शर्म करने में इन्हें कौनसा आनंद मिलता है।

अब तक एक ब्राह्मणी भोजन परोस रही थी।

सहसा रजनी बाबू थाली से हाथ खींचकर बैठ गये और बोले —ठीक है—न बोलिये—हम भी प्रतिज्ञा करते हैं—जब तक भाभी साहब स्वयं उठकर हमारी मनुहार नहीं करेंगी हम कुछ नहीं खावेंगे!

सब के कौर हाथ के हाथ में रह गये—एक गंभीर सन्नाटा छा गया। पर बीच-बीच में रजनी हँसकर उस सन्नाटे को भंग कर देती थी। चंद्रिका बड़े असमंजस में पड़ गई—कुछ देर मौन रहकर रजनी से बोली:—अब क्या करूं बहन—"भैया साहब" को यह क्या ज़िद सूझी है! रजनी ने व्यंग पूर्वक जवाब दिया:—बात सच है बहन,—मामला जोखिम से खाली नहीं है—डाकुओं का सामना करना होगा—खूब सोच समझ करही आगे बढ़ना! आपके मुख मंडल की अद्वितीय रूपराशि पर डाका पड़ जाने का—मुझे भी पूरा भय है! चंद्रिका अब शर्म से कुछ नहीं बोल सकी!

इसी समय चंद्रकांत बाबू भी बोल उठे:—इतने विचार में पड़ने की कोई बात नहीं है—"रजनीकांत" से बोलने में कोई हर्ज नहीं है।

किंतु चंद्रिका एक इंच भी अपने स्थान से नहीं हटी। चंद्रकांत बाबू ने सोचा—शायद चंद्रिका मेरे सामने रजनीकांत से बोलने में शर्माती होगी! यह अनुमान चंद्रकांत बाबू का सच भी था।

चंद्रकांत बाबू—"कामिनी" को गोद में उठाकर

उसे यह कहते हुये खड़े हो गये—"यह देवर भोजाई का झगड़ा है—इसमें अपने बोलने की क्या जरूरत—चलो कामिनी, अपने तो सड़क पर चलने वाली मोटर गाड़ियाँ देखें।"

चंद्रकांत बाबू टहलते हुये एक तरफ जाकर खड़े होगये। चंद्रिका ने भी शीघ्रही निश्चय कर लिया। जब स्वामीकी आज्ञा हो चुकी है—तब मुझे शर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

चंद्रिका शीघ्रतासे खड़ी हो गई—अर्द्ध घूँघट मात्र रह गया। चंद्रिका मुस्कुराती हुई "रजनी" बाबू के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई—और अत्यंत कोमल कंठ से बोली:—क्या परोसूँ भैया साहब ?"

चंद्रिका के मुसकान युक्त अधर युगल से निकली हुई मधुर कंठ ध्वनि—रजनीकांत बाबू ने सुनली—और देखली—इनका हृदय भावज प्रेम से प्रमुदित हो उठा। वे चंद्रिका के चरणों में मस्तक नवाकर बोल उठे:—मुझे वही आशिर्वाद दो भाभी जो सीता ने लक्ष्मण को दिया था—मेरे आनन्द का आज वारापार नहीं है।

चंद्रिका कुछ नहीं बोली, मुस्कुराती हुई शीघ्रता से परोसने का सामान उठाने लगी—इसी समय चंद्रकांत बाबू भी थाली पर आगये! चंद्रिका शर्माती हुई अर्ध घूँघट निकाले परोसने लगी। "कामिनी" इसी समय "चंद्रिका" को अपनी मां समझ कर मचल गया। आखिर चंद्रकांत बाबू की गोदी से खिसकही गया।

चंद्रिका तो "कामिनी" के लिये उत्सुक बनीही हुई थी—फौरन से कामिनी को खींचकर अपनी गोद में उठा लिया और भोजन की थाली पर आ बैठी।

अब रजनी इंदू को खिलाने के लिये छटपटाने लगी। यद्यपि रजनी परदा नहीं करती थी—पर छोटे से घूँघट से आँखो तक चेहरा उसका भी ढका रहता था। वह चंद्रकांत बाबू से निसंकोच बोलती थी—पर उनके सामने अपने पती से बोलने की हिम्मत उसमें नहीं थी।

रजनी रूठने का भाव दिखाकर बोली:—इन्दू को ला दो बहन नहीं तो मैं भी खाना नहीं खाऊँगी।

चंद्रिका ने एक मीठी चुटकी रजनी के गाल पर लेते हुये कहा:—मेरी सारी शर्म तूने छिनवादी, क्या अब भी तेरा पेट नहीं भरा है? इन्दू अगर इतनी प्यारी लगती है तो भैया साहब की गोद से क्यों नहीं उठा लाती। रजनी नीची नजर कर मुस्कुराने लगी।

इसी समय इंदू रोने लगी—और रजनी कांत बाबू उसे उठाकर चंद्रिका की गोद में बिठाने आये।

चंद्रिका धीरे से बोली—मुझे नहीं चाहिये-इन्दू जिसने मांगी है उसेही दीजियेगा!

चंद्रिका ने कामिनी को छाती से लगाते हुये मुँह फेर लिया, अब रजनी और रजनीकांत शर्म के जाल में उलझ गये! रजनी ने भी नीची नजरकर एक तरफ मुँह करलिया!!

इस नज़ारे को देखकर चंद्रकांत बाबू भी हँसे बिना नहीं रह सके—चंद्रिका तो खिल खिला कर हँसही पड़ी ! लाचार रजनी बाबू—जबरन भावज की गोद में " इंदू " को छोड़कर चल दिये।

रजनी ने तुरंत "इंदू" को अपनी गोद में खींचलिया। भोजन करना समाप्त हो चुका था ! दोनों मित्र नीचे बैठक खाने के कमरे में चले गये। अब उस खुली छतपर दोनों बहन अपनी गोद के खिलौनों से खेलने लगीं।

चंद्रदेव—उस निर्मल आकाश से अमल चांदनी प्रसारित कर रहे थे। उन्हें भी इन सुन्दरियों के अर्द्ध घूँघट की ओट सहन नहीं हो सकी। दोनों बहनें एक चौखटे पर बैठकर बातें करने लगीं।

चंद्रिका:—कामिनी का चौड़ा ललाट-बड़ी बड़ी चमकदार आंखें-तीखी नाक-ये सब भाग्यवानी के लक्षण नहीं तो क्या हैं ? यदि " इन्दू " जीवित रही तो इसे " कामिनी " के ही हाथ सौंप दूंगी। ऐसा भाग्यवान दामाद यदि मुझे मिला-तो मेरी इन्दू के सुख का क्या कहना !

रजनी:—और इन्दू सरीखी सुकुमार बहूरानी को देखकर मेरे सुखकी कौन सीमा रहेगी !

चंद्रिका:—तब क्या सचमुच कामिनी-और इन्दू की शादी होगी ?

रजनी:—यदि मैं जीवित रही तो अवश्य होगी।

चंद्रिका:—पर इन दोनों अबोध बच्चों की भी राय एकबार ली जाय।

इसी समय चंद्रिका ने—अपने गले से मोतियों की माला उतारकर इन्दू के हाथमें दे दी। इन्दू ने दोनों हाथों से माला पकड़ली। दोनों बालक उस चौखटे पर खड़े किये गये—इसी समय "कामिनी" अपनी छोटी छोटी टाँगें उठाकर—नाचने लगा फिर दोनों हाथों को आगे बढ़ाकर इन्दू के मुखपर फिराने लगा।

चंद्रिका एक बालिका की तरह बोली:—कामिनी! क्या अपनी भावी दुलहन को प्यार कर रहे हो? कामिनी जोर से खिल खिलाकर हँस उठा—इन्दू भी कामिनी को हँसते देखकर हँसने लगी। इसी समय रजनी ने इन्दू को उठाकर—वह मोती माला—"कामिनी" के गले के पास ले जाकर पहनाने को कहा! एका एक—"इन्दू के हाथ से माला छूट पड़ी, पर वह ठीक कामिनीके मस्तक पर से खिसकती हुई उसके गलेमें जा बैठी।

इसी समय हवा का एक तेज झोंका आया—दोनों सखियों के सिर की साड़ियां उड़ गईं। आनन्द में दोनों हँस रही थीं। उस मीठी हँसी से हिलोरें मारते हुये साड़ी विहीन मुखड़ों को ऊपर उठा कर दोनों बहनों ने—अरे यह कैसी हवा है—कहते हुये आकाश की तरफ झांका। मालूम हुवा—उन शर्म के घूंघट को हटे देख कर—भगवान चंद्रदेव भी टहाका मार कर हँस रहे थे। चौखट पर वह नन्हीसी युगल जोड़ी हँस रही थी—मस्तक पर दोनों बहनें—और आकाश में

भगवान चंद्रदेव हँसी को चौकडी भर रहे थे !

इसी समय चंद्रिका ने कहाः—रजनी—यह कैसी मीठी हँसी है—सारा ब्रह्माण्ड हास्यमय दिखाई दे रहा है ! यह कैसी सुखदायिनी—हँसी है !! आओ बहन आज जी भर कर हँसलें —यह संसार एक विचित्र मायामय बाजार है—कल का नहीं भरोसा क्या होने वाला है !

दोनों बहनें—गले में गलबाहियां डालकर उस छत पर टहलने लगीं। इसी समय एक छोटी सी बदली उठी और फैलने लगी। धीरे धीरे भगवान चंद्रदेव उस की ओट में छिप गये। वह आनंद—वह हंसी भी धीरे धीरे विलीन होने लगी।

इसी समय नीचे की तरफ एक भीषण धड़ाम—सी आवाज हुई ! यह क्या—यह क्या—कहती हुई दोनों बहनें जी छोड़कर बचों को गोदमें उठाती हुई नीचे की तरफ भागीं। उस भयानक वारदात को देखकर रजनी कांप उठी चंद्रिका अवाक्—सी रह गई !!

चंद्रकांत बाबू भीषण क्रोध मुद्रा धारण किये कमीज की बाँह चढाये आँखों से चिनगारियाँ बरसाते हुये कंपित गात से खड़े थे ! पास में रजनीकांत दोनों हाथों से मुँह ढके खड़े थे। सामने मेहमूद आंगन में लोट पोट कराह रहा था और तरह तरह की गालियां बक रहा था।

चंद्रकांत बाबू ने उसे भीषण लात मारकर ठुकराते हुये पुनः कहाः—नराधम-चांडाल-यदि जिंदा रहना चाहता है तो इसी समय घर से बाहर निकलजा—फिर इस घरमें

कभी नहीं आना।

मेहमूद अपनी टोपी उठाकर जान बचाकर निकल भागा। अब चंद्रकांत बाबू उसपत्र को पढ़ने लगे जो मेहमूद से अभी उन्होंने छीना था। पढ़ते—पढ़ते-उनका क्रोध और भी भीषण हो गया! उस पत्र को फर्श पर फेंकते हुये उन्होंने रजनीकांत का हाथ पकड़ लिया और गर्जती हुवे ज़बान से पूछा:—सच बता यह पांच सौ रुपये मांगने वाली "नर्गिश" कौन है?

रजनीकांत कुछ नहीं बोले धड़ाम से चंद्रकांत बाबू के कदमों में गिर पड़े।

चंद्रकांत बाबू वहांसे हट गये-और बोले:—'चंद्रिका' जल्द से नीचे उतर चलो— यह घर अब मनुष्यों के रहने योग्य नहीं रहा है! चंद्रिका—अवाक सी रह गई-रजनी पत्थर की प्रतिमा बन गई! चंद्रिका ने--कामिनी को रजनी की गोद में दे दिया और इन्दू को अपनी गोद में लेकर चुपचाप सीढ़ियाँ उतरने लगी। चंद्रकांत बाबू हृदय के दुःख को अब नहीं रोक सके—उनकी आखों से अश्रुधारायें बह चलीं—वे यह कहते हुये शीघ्रता से सीढ़ियाँ उतर गये —"आह! इस सती साध्वी स्त्री की क्या दशा होगी! कुछ भी हो—अब इस घर में, मैं नहीं आऊंगा।"

१२

एक बुढ़िया थी—नाम "काशी" पर थी पूरी सत्या-नाशी! जिस मोहल्ले से काशी निकलती सन्नाटा-सा छा जाता! कामिनियां—"काशी आरही है" सुनकर अपने दुध मुँहे बच्चों को छाती से चिमटा कर—मकान के भीतर सांकलें चढ़ा लेतीं! मोहल्ले में खेलते हुये बच्चे—"अरे भागो, भागो

हिन्दू मारशल-लॉ

खौफ़नाक 'काशी'

जब इसकी जवानी थी—इक्कीस घरों में बहू बनकर रह चुकी थी—पर सब घरों का सत्यानाश हो गया!

सरस्वती-प्रेस, काशी।

काशी आ रही है—खा जायगी" कहते हुये भाग खड़े होते! सारे मोहल्ले में—काशी के भय से कोहराम—सा मच जाता था!

आखिर काशी थी कौन! इस बात को सच बता सकना तो आसान नहीं था—पर काशी के विषय में कई एक किंवदंतियाँ प्रचलित थीं। लोग कहते थे—काशी एक सौ साठ वर्ष की औरत है—तीसरी बार नये दांत उसको निकल आये हैं—अब भी उसमें इतनी ताकत है कि अच्छे नौजवान की कलाई पकड़ ले तो उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाय! जब उसकी जवानी थी—इक्कीस घरों में बहू बन कर वह रह चुकी है—पर सब घरों का सत्यानाश हो गया। इसके बाद काशी एक भीषण कुटनी के रूप में मशहूर हुई। कई एक सुख सौंदर्य्य से परिपूर्ण गृहस्थियों का उसने सर्वनाश कर डाला! इसके बाद बुढ़ापे में काशी "डाकिन" समझी जाने लगी। काशी छोटे बच्चों का कलेजा निकाल लेती है—इस भय से बच्चों से लगा कर बूढ़े तक काशी से डरते थे।

साग वाली मालिनें—काशी के आतेही भय से कांप उठतीं। दाल सेव के खोमचे वाले उसे देखतेही इधर उधर गली में छिप जाते—चूंकि काशी जिसकी दुकान के सामने खड़ी हो जाती उससे मनचाहे भाव से सौदा खरीदती थी! कभी कभी तो वह उधार भी कर जाती। पर पैसे के लेन देन में वह सच्ची थी—उधार का पैसा वह ठीक

समय पर अदा कर देती थी।

लोग उससे इतने डरते थे कि, सामान तौलते समय हाथ से तराजू छूट पड़ती—बोली बंद होजाती—और छाती धड़कने लगती थी!

वास्तवमें काशी का रूप भयावना था—उसके बड़े बड़े दांत ओठों से बाहर निकल आये थे—बाल एकदम सफेद घास के पूले की तरह सघन थे—कमर कुछ झुकगई थी—आँखें बड़ीबड़ी और सुर्ख थीं! खांसते समय कभी कभी जब उसकी साड़ी माथे पर से हट जाती तब उसका विकराल स्वरूप अत्यंत भयानक प्रतीत होता था!

परंतु जबसे "काशी" बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर आदि तीर्थ होकर आई है, तब से लोगों के दिल में काशी का भय अब उतना नहीं रहा—पर बच्चे तो अब भी कांपते थे।

एक बार बद्रीनाथ से लौटते समय, चंद्रकांत बाबू की मांका "काशी" से परिचय हो गया था-और तब से काशी चंद्रकांत बाबू के घर में कभी कभी आती जाती थी।

उसी दिन की बात है, जब चंद्रिका रजनी के घर गई थी—पीछे से काशी आई। चंद्रिका की सास क्रोध में बैठी थी। काशी ने आते ही पूछा:—बड़ी बहू आज उदास क्यों हो?

कौन काशी मां! आज तो बहुत दिनों में आई हो—किधर रास्ता भूलकर इधर आना हो गया!

खांसते हुये लकड़ी एक कोने में रखकर काशी बड़ी

बहू के पास आ बैठी और बोली:—दो चार मूंग के पापड़ लेने आई हूं—क्या करूँ अब मेरा शरीर थकगया है—पापड़ मुझसे नहीं बन पाते !

पापड़-कौन बड़ी बात है मां—यह तुम्हारा ही घर है। चंदू मेरा मेजिस्ट्रेट है—तुम कोई बात से तकलीफ न देखा करो।

बड़ी बहू ने कोई चालीस के करीब पापड़ लाकर दिये—काशी खुश होगई। फिर कुछ देर चुप रहकर वह बोली:—आजकल छोटी बहू का क्या हाल है—दिखाती नहीं कहां गई है ?

क्या कहूं काशी मां-मेरी दुःख कथा सुनकर क्या करोगी ! मैं रात दिन परमेश्वर से मौत चाहती हूँ पर वह भी नहीं मिलती। जबसे इस हत्यारी बहू ने घर में पैर रखा है—प्रति दिन मेरा पाव आधपाव खून जलता है ! चंदू पर भी इसने नहीं मालूम कौनसा जादू फेर दिया कि, वह भी-अब तो अपनी बीबी की तरफदारी करता है। घर में मेरी इज्जत एक दासी के बराबर भी नहीं रही है। आजही की बात है मैंने कुछ भी जवाब नहीं दिया उसी के पहले नौकरानी को साथ लेकर वह छैल छबीली—चमक चंदा—मुझे मानो पांव की जूती समझ कर हँसते हुये चलदी !

काशी भयावने दांतो से बिकट हँसी हँसते हुये बोली:—छिः क्या यही तुम्हारा रोब है ! कुछ दिन छोटी बहू से मुझे बोलने की इजाजत देकर देखो मैं उसे कितना

जल्द तुम्हारे पांव की जूती बनाये देती हूं!

नहीं वह बड़ी चालाक है—मुझे विश्वास है वह तुम्हारे सरीखी बुढिया को बातों ही में उड़ा देगी! हाय—क्या करूं—अगर यह मर भी जावे तो—मेरे चंदू का दूसरा विवाह करदूं। जिसे मैंने पाल पोस कर इतना बड़ा किया—मेरे उस भोले चंदू को भी इसने मुझसे छीनलिया! काशी—बताओ कोई उपाय है—हाय मेरे खून की प्यासी—हत्यारी बहू कब मरेगी—कहते हुये बड़ी बहू आँसू डालने लगी!

छिः क्यों रोती हो पगली—यहलो, कहते हुये काशी ने एक कांच की शीशी निकाल कर—बड़ी बहू के हाथ में देदी। फिर चुपचाप कान में कुछ कह दिया!

बड़ी बहू आँसू पोंछकर हंस पड़ी—और बोली—काशी मां इस उपकार का बदला किस तरह चुकाऊँ?

"तुम सुखी रहो—यही मेरे उपकार का बदला है—मैं धन दौलत की भूखी नहीं हूं!"

बड़ी बहू हँसती रही—काशी पापड़ लेकर शीघ्रता से चलदी।

१३

आजकल चंद्रिका दिन रात अपने कमरेही में बैठी रहती थी—चूंकि सास महोदया ने चंद्रिका को चौके चूल्हे पर नहीं चढ़ने की कड़ी आज्ञा सुनादी थी ! यदि वास्तव में इस जगह कोई शैतान बहू होती तो सास की इस आज्ञा से प्रसन्न हुये बिना नहीं रहती—किंतु भोली चंद्रिका—

इस आज्ञा में सास की कड़ी नाराज़गी को जानकर दिल ही दिल बहुत दुःखी हुई।

बारंबार—पतिदेव से भी सास की इस नाराज़गी की शिकायत चंद्रिका करती रहती थी—पर वे चुपचाप सुनकर अक्सर मौन रह जाते—कभी अफसोस भरी ज़बान से उत्तर देते—चंद्रिका! जाने दो, जिस बात में मां को सुख मालूम हो, वही काम तुम भी करो।

पतिदेव की सहानुभूति पाकर चंद्रिका अब अधिक चिंता नहीं करती थी! दोनों वक्त ठीक समय पर नीचे जाकर भोजन कर लेती और अपने कमरे में आकर बैठ रहती थी।

इन दिनों चंद्रिका की प्रकृती धीरे धीरे न मालूम क्यों बदलने लगी! जिस इंदू को "चंद्रिका" अपनी गोद से नहीं उतारती थी—उसी इंदू को खिलाने के लिये—एक नौकर की आवश्यकता हो गई! चंद्रिका तीन चार लायब्रेरियों की मेंबरा भी होगई—नौकर भी रखलिया गया था। नौकर के ज़रिये मन चाही पुस्तकें मंगाकर चंद्रिका पढ़ा करती थी। एक बार "चंद्रकांता उपन्यास" को चंद्रिका के हाथ में देखकर चंद्रकांत बाबू बोले:—चंद्रिका—ऐसी शृंगारिक पुस्तकें न पढ़ा करो! चंद्रिका मुस्कराते हुये—एक अंगड़ाई लेकर खड़ी हो गई और प्रियतम के गले में गलबहियाँ डालकर अत्यंत मधुर स्वर में बोली:— प्रियतम! आप तो मुझे छोड़कर अदालत जाते हो पर पीछे से सारा दिन मैं एक एक मिनट

गिनकर बिताती हूँ! दिल कहता है—आपको कहीं न जाने दूं—किसी वाटिका में डलिया लेकर फूल चुनने निकलूँ —बादल मंडरा रहे हों—बिजलियाँ चमकती हों--उस समय किसी आम्रतरु के नीचे बैठकर पुष्पहार बनाऊँ--सहसा मुसकराते हुये मेरी ही खोज में आते हुये आप दिखाई दें--तब मैं दौड़कर वह पुष्पहार आपको पहना दूँ—फिर आपकी छाती से चिमट जाऊँ--इसी समय कोकिला कूक उठे बादल गरज उठे और मूसलाधार वृष्टि होने लगे तब मैं शीत से काँपती हुई और भी प्रगाढ़ रूप से आपके बाहुपाश में गुथ जाऊँ! अहा कितना आनंद मालूम होगा--कैसे सुहावने वे दिन होंगे नाथ!!

चंद्रकांत बाबू मुसकरा कर बोले:—शर्म के घूँघट में छिपने वाली चंद्रिका तेरे इस नन्हे से दिल में ये नई नई उमंगें कहांसे उमड़ आई! कहीं तू पगली तो नहीं बन जायगी!

जब तक आप अदालत से घर नहीं आते--" पगलीही तो बनी रहती हूँ प्रियतम! " दिल में कई उमंगें उठती हैं—आपके साथ शैल विहार करूँ—शिमला देखूं—काश्मीर का प्राकृतिक सौंदर्य्य देखूं—कहांतक कहूं—आखिर मेरी बातें सुनने का समय तक भी तो आपके पास नहीं है! आप मेजिस्ट्रेट हैं—क्या इसलिये ज़िन्दगी भर ही आपसे डरा करूं—अपने दिलकी बात दिलही में रहने दूँ! मेरे लिये एक ग्रामोफोन और इंदूके लिये एक छोटी सी टमटम ला दीजिये इसीसे दिल बहलाऊँगी। देखिये अपने घर में अच्छा

पलंग भी तो नहीं है—आपके सोने के लिये बढ़िया गदीला और तोशक तकिये लाना क्या जरूरी नहीं है? ये सब चीजें क्यों नहीं ला देते प्रियतम! मैं जल्द ही हारमोनियम बजाना सीख लूँगी—जब आप घर पधारेंगे—सुन्दर सजी हुई शानदार शयन शय्या तयार मिलेगी—द्वार पर आपके खरीदे हुये ज़र ज़ेवरों से लदी हुई मैं दासी आपके स्वागत के लिये खड़ी मिलूँगी—जब आप चारपाई पर बैठेंगे तब बाजा बजाकर—एक मीठा—सा अलाप भरूँगी। नहीं—नहीं—यह मैं क्या बक रही हूँ—बाजा बजाना मेरी किस्मत में कहां लिखा है—मीठा सा अलाप भरने का साहस मुझ में कहां है! मैं कितनी अभागिनी हूँ प्रियतम! आपके मनोरंजन करने में इतनी सी सुविधा भी मुझे नहीं मिल सकती! यह कैसा हिन्दूसमाज है नाथ—चलो, अपन इस जंजाल से निकल चलें—किसी पहाड़ ही में जाकर क्यों न बसें?"

चन्द्रकांत बाबू भरे हुये कंठ से बोले:— चन्द्रिका संसार में तुझसे बढ़ कर प्रिय मुझे कौन है—तुझे सुखी रखने की चिंता मुझे हर वख्त सताया करती है। तेरे सुख के लिये मैं सर्वस्व त्याग कर सकता हूँ! बोल—बोल चन्द्रिका! क्या—सचमुच घर छोड़ कर अपन चल दें!

चंद्रिका हकबका कर बोली:—नहीं-प्रियतम—मैं अपने सुख के लिये—समाज को आपकी तरफ अंगुली नहीं उठाने दूँगी। आज मेरा दिल न मालूम क्यों बेचैन है—मैं आप से न मालूम क्या क्या बक गई। आप मेरे लिये कोई चिंता न करें।

अदालत का समय होगया है, पधारिये स्वामिन।

चंद्रिका कमरे के फाटक तक प्रियतम की बाहु से गुँथी हुई उन्हें पहुँचाने गई—चंद्रकांत बाबू चुपचाप उदास मुखमुद्रा से नीचे की तरफ़ सिढ़ियां उतर गये।

भोजन के पश्चात् दो घंटे तक चंद्रिका का मन इसी तरह कभी अत्यन्त उदास और कभी अत्यन्त प्रेमोन्मत्त रहता था! चन्द्रकान्त बाबू भी चंद्रिका के इस परिवर्तन को आश्चर्य की निगाह से देखते रहते थे। अक्सर चंद्रिका शृंगारिक बातें अधिक पसन्द किया करती थी। चन्द्रिका—अब पहले सी सात्विक विचार वाली चंद्रिका नहीं रही थी!

चंद्रकांत बाबू अदालत चले गये—चंद्रिका चारपाई पर लेट कर पुनः चंद्रकांता पढ़ने लगी! इसी समय एकाएक बुढ़िया काशी ने कमरे में प्रवेश किया। चंद्रिका खुले मुँह आज़ादी से लेटी हुई दोनों हाथों की कोहनियां एक तकिये पर टिका कर पढ़ने में तल्लीन थी।

काशी ने पुकाराः—छोटी बहू क्या कर रही हो!

चंद्रिका चौंक उठी—कानों के कर्णफूल झूल उठे!

काशी की आँखों के सामने चाँद चमक उठा—चंद्रिका बड़ा सा घूँघट निकाल कर ज़मीन पर बैठ गई—किताब एक तरफ रखदी!

बैठी रहो बहू—मैं आज तुम से कुछ जरूरी बातें करने आई हूँ! कहती हुई काशी चंद्रिका के सामने बैठकर पुनः कहने लगीः—"मुझे यह जानकर बड़ा दुःख होता है—कि तुम

सरीखी रूपवती आज्ञाकारिणी बहू पर भी तुम्हारी सास इतना जुल्म करती है! राम-राम! तुम कैसे सहती होगी—बहू! कलही मैं आई थी—तब तुम्हारी सास कह रही थी—चंदू का दूसरा विवाह इसी साल कर दूँगी—और इस दुष्ट बहू को पीहर भेजकर फिर कभी नहीं बुलाऊँगी।"

चंद्रिका इस बात को सुनकर काँप उठी—आँखों से आँसू बहाने लगी!

"हाँ—आगे और सुनो बहन—इधर तुम्हारे पतिदेव भी देखने में सीधे साधे पर रोज क्लब में नई नई औरतों से मोहब्बत करते हैं। क्लब में ऑफिसरों की बी. ए.—एम. ए. पास नखराली लड़कियाँ आती हैं—उन्हीं के साथ हँसी मज़ाक करने के लिये तो बाबू साहब वहां जाते ही हैं!

चंद्रिका—काशी से कभी नहीं बोली थी—पर आज बोल उठी—"क्या यह सब सच कहती हो माँ" —नहीं नहीं, मेरे स्वामी को इन झूठी बातों से कलंकित न करो!

काशीः—मुझे झूठ बोल कर क्या लेना है-मैं तो क्लब के पासही रहती हूँ। एक दो बार तो दो पहर में भी क्लब में एक लड़की के साथ तीन तीन घंटे तक—अकेले बात चीत करते मैं देख चुकी हूँ। अगर विश्वास नहीं हो तो मेरे साथ चलो आँखोंसे बतादूंगी।

चंद्रिकाः—यदि यह सच है तो हाय, मैं क्या करूं-मेरे स्वामी को प्रसन्न करने योग्य क्या मैं नहीं हूँ?"

काशीः-है क्यों नहीं—तुझसी रूपवाली उन, बदजात पाव-

डर लगाकर मेमों की नकल करने वाली बनावटी सुंदरियों में एक भी नहीं होगी। पर यह सब तेरीही भूल का परिणाम है।

चंद्रिका ने आश्चर्य से पूछा:—मेरी भूल—वह कैसी—मैंने कौनसी भूल की माँ?

काशी:—मनुष्य को जब तुझ सरीखी आज्ञाकारिणी स्त्री मिल जाती है तब वह स्त्री को पैर की जूती समझने लगता है! वह जानता है, "घर की मुर्गी दाल बराबर" बस यही तुम्हारा सीधापन उन्हें बुरे रास्ते बताता है।

चंद्रिका:—स्वामी के आगे सीधी नहीं रहूँ—तो क्या मगरूर बनकर रहूँ? नहीं, यह मुझ से नहीं हो सकेगा। और कोई उपाय बताओ माँ! मेरे स्वामी को बुरी राह से बचाने के लिये मैं अपने प्राण भी दे सकती हूँ।

काशी हँसकर बोली:—चंद्रिका! तू अभी निरी बालिका ही तो है—मैं एक बढ़िया उपाय बताती हूँ। अगर तू चाहे तो काम में लाकर अपने स्वामी को सीधी राह पर ला सकती है।

चंद्रिका काशी के और भी समीप आकर बैठ गई और उत्सुकता पूर्वक बोली:— वह क्या?

काशी:—पहले मेरी पूरी बात को सुनले—बीच में नहीं बोलना। एक बड़े जागरिदार हैं—वे मेरे पहचान के हैं—तुम उनके नाम से एक पत्र लिख दो—सिर्फ चार लाइन का! उसमें लिखना:—"मुझ दुखिया के मालिक—चूंकि मेरे स्वामी दूसरी शादी कर रहे हैं। चंद दिनों बाद मैं घर

से बाहर निकालदी जाऊंगी--यदि दासी को आप अपने चरणों में स्थान दें तो बडी कृपा होगी!" बस इसमें कोई बुराई भी नहीं है। मौका देखकर यह पत्र मैं चंद्रकांत बाबू को क्लब में ही जाकर, जब वे अपनी प्रेमिका के साथ होंगे—बुलाकर बता दूंगी—और इस तरह जब वे गुस्सा करने लगेंगे तब उनकी गुप्त प्रेमिका के भंडाफोड करने का डर बतलाकर ठीक रास्ते पर उन्हें ले आऊँगी—उनसे प्रतिज्ञा लेलूंगी कि आगे से वे कभी पराई स्त्री को नहीं देखेंगे। हँसते हुये काशीने कहा:—बहू, कहो--कितनी बढ़िया तरकीब है!

किन्तु यह क्या! "कुलटा--दुराचारिणी--डाकिन--निकल मेरे घर से!! नहीं तो खून कर डालूंगा"—कहते हुये—चंद्रिका ने भीषण क्रोध का स्वरूप धारण कर लिया। इसी समय पांच सात लात कसकर काशी के मुँह पर चंद्रिका ने जमादी। काशी के बाहर निकले हुये दो दांत टूट पड़े—खून से कमरा रंग गया—"मार डाला—बचाओ—बचाओ"—कहते हुये काशी उलटे पांव भाग खडी हुई!!!

१४

चंद्रिका उन्मादिनी की तरह कमरे में इधर उधर घूमने लगी ! यह क्या—"काशी" मेरे पास क्यों आई—उसे मेरे कमरे तक किसने आने दिया ! पहले सास की बुराई-फिर मेरे देवता पर झूठा कलंक—हे प्रभो ! यह क्या पिशाचलीला है !! क्या इन सब बातों में सास का हाथ है—क्या इस

तरह सास मेरे सतीत्व की परीक्षा लिया चाहती है! अथवा यह कुलटा मेरी सास की आँखों में धूल झोंककर मुझे पतन के गढ़े में ढकेलने का साहस करके मेरे पास आई थी! उफ! चाकू नहीं था—वरना इस पापिनी की जिह्वा काट लेती! मेरे देवता के सिर झूठा कलंक मढ़ने वाली राक्षसी से पूरा बदला लेती! छिः छिः क्या—मेरे प्राणाधार जिनके चरणों में यह जीवन समर्पित कर चुकी हूं, मुझे ठुकराकर किसी अन्य को अपनावेंगे! ऐसा विश्वा-सघात—वह भी मुझ अबला से! नहीं नहीं—यह सब काशी का षड्यंत्र मालूम होता है!!!

तब यह सारी कथा—सास से कहकर इस चांडा-लिनी का घर में ही आना क्यों न बन्द करवादूं। सास मुझ से कितनी ही नाराज़ क्यों न हो—पर ऐसी बात सुनकर वह कुलटा काशी को अवश्य दुतकार देंगी।

इसी समय "इंदू को लिये" नौकर ने कमरे में प्रवेश किया। "चंद्रिका" इंदू को गोद में लेकर प्यार करने लगी। नौकर एक बारह साल का अहीर का लडका था—नाम उसका हीरा था। इन्दू को देकर हीरा जाने लगा। इसी समय चंद्रिका ने कहा:—हीरा! जरा ठहर "माँ साहब" से कुछ बात चीत करना है-मैं जो कहूं-तुम उनसे कहते जाना।

हीरा ठहर गया—चंद्रिका जाने के लिये घूंघट निकाल कर तयार हुई। इसी समय "चंद्रहार" जो खूंटी पर

टँगा था—उसे वहाँ न देख कर चंद्रिका चौंक उठी। अरे यह क्या हुआ—हीरा—मेरा चंद्रहार कहाँ चला गया?

'हीरा' भी भय से काँप उठा—मैंने नहीं देखा—मालिकन! चंद्रिका ने ट्रंक पेटियां-बिस्तर-आलमारियां सब ढूंढ डालीं, पर हार का पता नहीं लगा!

तब क्या हुआ--कौन ले गया—उफ! वह शैतान "काशी" ही ले गई! चल तो—हीरा माँसाहब को दौड़ कर खबर दे। हीरा तेजी से नीचे की तरफ भागा। चंद्रिका भी इन्दू को गोद में लिये बेहताश दौड़ पड़ी।

पर यह क्या--नीचे आकर देखा तो--सास--- काशी के टूटे हुये दांतों को घी से सेंक रही थी। चंद्रिका चौंक कर खड़ी हो गई। हीरा ने पहलेही आकर हार के चोरी जाने की घटना कह सुनाई थी।

इसी समय कराहती हुई काशी खडी हो गई और कपड़े झाड़ कर बोली:-देखना बड़ी बहू! मेरे कपड़े देख लो कहीं यह चोरी मेरे सिर नहीं मढ़ दी जाये। फिर छोटी बहू की तरफ ओंठ चबाते हुये काशी ने घूर कर कहा:—मगरूर बहू-तेने मेरे दो दांत तोड़े हैं—पर याद रख इसका बदला मैं तेरे खून से लूंगी! चंद्रिका अवाक—सी रह गई। सास दौड़ कर काशी के कदमों में हाथ जोडकर कहने लगी—मां जी क्षमा करो—मेरे चंदू पर दया रखना! आपके कोप को मैं जानती हूं।

"नहीं, मुझे इसी मगरूर बीबी से बदला लना है" --कहते हुये काशी शीघ्रता से सीढ़ियां उतर गई। अब सास

वहां से उठ कर चंद्रिका के सामने खडी होगई। हीरा पास में खडा अलगही कांप रहा था। सास की क्रोधमयी रौद्र मूर्ति को देखकर 'हीरा' रो पडा। वह घुटने टेक कर कहने लगाः—बडी मां! मेरी भोली मालिकन पर इतना क्रोध न करो—देखती नहीं वे कैसी सिसकियां भर कर रो रही हैं!

"बदमाश! मेरा पांच हजार का हार इस डाइन ने खो दिया और तुझे इस छलनी के रोने पर दया आई है—निकल मेरे घर से बाहर!" सास ने हीरा का हाथ पकड कर फाटक के बाहर इतने जोर से धक्का देकर उसे ढकेला कि वह गिरतेही बेहोश होगया।

सास ने किंवाड बंद करके फाटक लगा लिया। फिर दौड़ कर चंद्रिका का हाथ पकड लिया। चंद्रिका मृतदेह सी एकही झटके में सास के साथ खिंची चली आई—इन्दू भी फूट फूट कर रोने लगी!

इसी समय सास ने गर्ज़ कर कहाः—बदजात—सच सच बता वह हार तूने किसको दे दिया है? मकान से चोरी करने की किसी की हिम्मत नहीं है—फिर ऐसा तुझे कौन प्यारा है जिसे तूने मेरा ५०००) का हार दे डाला?

चंद्रिका—आह! यह क्या—यह क्या—पृथ्वी घूम रही है—आकाश से उलकापात हो रहा है—क्या यही प्रलय का वास्तविक रूप है? क्या संसार में मेरे देवता से भी अधिक, मेरा कोई प्यारा मौजूद है—कान इन शब्दों को सुनने के पहले तुम बहरे क्यों नहीं होगये—आंखें तुम प्रकाशहीन

क्यों नहीं होगई—आकाश से वज्र क्यों नहीं गिरे—पृथ्वी क्यों नहीं फट पड़ी ! नहीं नहीं—पापिनी के लिये कहीं स्थान नहीं है ! पृथ्वी क्यों फटे—वज्र क्यों गिरे—मैं पापिनी हूं, मेरे स्पर्श से संसार पापमय कहीं न हो जाय—इसी भय से तो देखो सब कोई मौन हैं !

एक धड़ाम—सी आवाज़ हुई—चंद्रिका गश खाकर ज़मीनपर गिर पड़ी ! कमरे में पूर्ण सन्नाटा छा गया। किन्तु बीच बीच में रोती हुई इन्दू कभी कभी—"माँ" कह कर उस सन्नाटे को भंग कर देती थी !

सास कुछ देर तो चुप चाप ज्यों की त्यों खड़ी रही—फिर कुछ बड़बड़ाने लगी। "आज तक नहीं सुना था-कि ज़हर में भी असर नहीं होता। काशी ने कहा था १५ दिन तक सिर्फ दो बूंद भोजन में देने से धीरेधीरे यह रास्ते का काँटा अलग हो जायगा। पर इस वज्र देह पर तो कोई असर ही नहीं हुवा ! तब क्या करूं ?"

इसी समय सास रसोई घर से एक कांच की शीशी ले आई—वह एक तरल पदार्थ से आधी भरी हुई थी।

सहसा चंद्रिका ने करवट बदली और कुछ होश हुवा आँखे खुली देख कर "इन्दू" अपने छोटे छोटे हाथों को घूँघट में डाल कर माँ के मुँह पर फिराने लगी ! चंद्रिका उठ बैठी उसे जीवन की अंधकारमयी घड़ी में, समीप बैठी हुई इन्दू प्रकाश का पुंज दिखाई दी ! चंद्रिका ने विह्वल होकर इन्दू को छाती से चिमटा लिया।

किन्तु, फिर वही गर्जन सुनाई दिया "डाइन मेरा चंद्रहार बता-तेरी सब चालें मुझे मालूम हो गई हैं ? वह कौन जागीरदार है जिसे तू पत्र दिया चाहती थी ? क्या इसी कुसूर पर तू ने बेचारी उस बुढ़िया के दांत नहीं तोड़ डाले ! बोल बोल कुलटा, हत्यारी, तेरी ये काली करतूतें जब मेरा चंदू सुनेगा उस अभागे की क्या दशा होगी !"

उसका हृदय कांच की तरह टूट जावेगा--वह पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ेगा—उसका मस्तक झुक जायगा!

सुनती हूँ तू बड़ी सती सावित्री है। पापिनी--बचा—बचा मेरे चंदू की इज्ज़त को--बचा ! अपना यह कलुषित कांड सुनाने के पहलेही तू मेरे घर से निकल जा ! अगर हिम्मत हो तो ले यह ज़हर पीकर इस कलंक कालिमा को सदा के लिये मिटा दे !

चंद्रिका कुछ नहीं बोली-सास ने ज़हर एक कटोरी में उँडेल कर उस दुःखिनी के सन्मुख रख दिया।

चंद्रिका फूटफूट कर रो रही थी। इन्दू भी रोने लगी !

उसी समय सास ने व्यंगपूर्वक पुनः कहा:—यह रोने का ढोंग क्यों नाहक करती है—यदि हिम्मत नहीं है तो कटोरी उलट दे और चुपचुप घर से बाहर चलीजा ! यह मज़ाक नहीं, तेरे ढोंगी सतीत्व की कसौटी है।

इसी समय चंद्रिका के आंसू एकदम सूख गये-उसने कटोरी उठाली और ओठोंसे सटादी। सहसा उसे प्रियतम की प्रतिमा उस विषपात्र में दिखाई दी वे कह रहे थे—ठहरो चांद्रिका तुमने शादी के समय

मुझसे क्या वादा किया था—आपकी आज्ञा बिना कोई काम नहीं करूँगी फिर यह विषपान मुझसे पूछे बिना क्यों!

"नहीं! प्रियतम—इस समय मेरे सतीत्वकी परीक्षा हो रही है-चंद्रिका आपके स्वाभिमान को हरगिज़ नहीं झुकने देगी! फिर मैं दुःखिनी ही तो हूँ-मेरे पीछे आप भी दिनरात दुःखी रहते हैं। इसके सिवाय समाज की निगाह में, मैं कुलटा विश्वासघातिनी आदि कलुषित नामों से पुकारी जाऊँगी—ऐसी पतित देह को जीवित रखने से क्या लाभ? मुझे मरने दीजिये प्रियतम!"

इसी समय फिर एक अट्टहास के साथ व्यंग सुनाई दिया—देखती हूँ मरना कितना आसान है!

"आह! प्रियतम! आज्ञा दो—यह भीषण अपमान—यह सैंकड़ों घावों से भी अधिक दुखदाई असह्य वेदना—नहीं सही जाती! मुँह से आज्ञा देने की हिम्मत नहीं है, तो आँखे बन्द कर लीजिये—मैं इसी को आज्ञा समझ लूँगी!

चंद्रिका ने देखा—प्रियतम दोनों हाथों से आंखें मूँदे खड़े-खड़े आंसू ढाल रहे हैं! चंद्रिका हँसकर बोल उठी:—"किसके लिये रुदन करते हैं नाथ—ऐसी हज़ारों चंद्रिकायें आपके चरणों में लोटेंगी!"

चंद्रिका ने मुँह खोलकर कटोरी उँढेलना चाहा—इसी समय—"माँ माँ"—कहते हुये इन्दू ने दोनों हाथों से कटोरी पकड़ली। चंद्रिका ने एक क्षण के लिये कटोरी को अलग हटाकर स्नेहभरी चितवन से इन्दू को देखा—उसका

मुँह चूम लिया—फिर दूसरे हाथ से उसे गोद में उठाकर-चंद्रिका उस कटोरी के तरल पदार्थ को एकही घूँट में गले के नीचे उतार गई !

इंदू रोने लगी "चंद्रिका" उसे प्यार कर कहने लगी:—क्यों रोती है बेटी तेरी नई माँ आवेगी—वह तुझे खूब प्रेम से रक्खेगी—फिर तेरे बाबू साहब भी तो तुझे बहुत प्यार करते हैं।

धीरे धीरे संध्या होने लगी—चंद्रिका की आँखें भी झपने लगी ? इंदू को गोद में बिठाये रखना चंद्रिका के लिये कठिन हो गया। धीरे धीरे उसपर बेहोशी के दौरे आने लगे —पर चंद्रिका अब भी इंदू को छाती मे चिपकाये हुये थी।

चंद्रिका की गिरती हालत देखकर—सास फिर सामने आकर खड़ी हो गई—धीरे से "इन्दू" को पकड़ कर एक दम खींच लिया !

चंद्रिका उस बेहोशी में भी चौंक उठी ! आजतक चंद्रिका सास से कभी नहीं बोली थी—पर उसे अब पूरा होश नहीं था !

इस समय का दृश्य अत्यन्त हृदयविदारक था—चंद्रिका का घूँघट खिसक चुका था—आंखें लाल सुर्ख होगई थीं—गर्दन एक तरफ झुकी हुई थी—इन्दू के दोनों पांव चंद्रिका के हाथ में—और धड़ सास के हाथ में था !

सास ने गर्ज़ कर एक लात का भीषण प्रहार कर चंद्रिका को धराशायी कर दिया—किंतु चंद्रिका साहस कर खड़ी होगई

उसने दौड़कर इन्दू का मस्तक पकड़ लिया और रोते हुये बोली:- "मैं चंद मिनटों की मेहमान हूँ—इस आखिरी समय में तो मुझसे मेरी इन्दू को जुदा न करो! किंतु सास ने पुनः इतने जोर से धक्का दिया कि "चंद्रिका" धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ी!

इसी समय किसी ने किंवाड़ खट-खटाये—सास ने भयभीत होकर किवाड़ खोल दिये—देखा तो चंद्रकांत बाबू और उनके पीछे हीरा खड़ा था !!

चंद्रकांत बाबू की आंखों से चौसर अश्रुधारायें बह रही थीं, इन्दू को छीनकर लात मारने का नज़ारा चंद्रकांत बाबू किवाड़ की दराज़ से देख चुके थे।

चंद्रकांत बाबू पागल की तरह दौड़कर चांद्रिका के पास जा पहुंचे—उसे होश नहीं था—उसकी सघन काली केश रश्मियाँ आंगन की धूलि से सनकर सफेद होगई थीं! चंद्रकांत बाबू सारी शर्म भूल गये !!

उन्होंने चांद्रिका के मस्तक को गोद में उठा लिया फिर विव्हल होकर बोले:—यह क्या—चांद्रिका तूने ज़हर क्यों पी लिया प्रिये! उफ! उठती क्यों नहीं—जरा आँखे खोलकर तो देखो—जिसके चरणों की धूली को तुम मस्तक पर चढ़ती थी—क्या उससे आज इतना रुठ गई हो—जोकि जबाब तक नहीं देती!

प्रियतम की आवाज़ पहचान कर उस बेहोशी में भी चंद्रिका ने थोडी सी आंखें खोली—दो बूंद गर्म आँसू उन खून सी सूर्ख आँखों से टपक पडे, किंतु—वह बोल न सकी!

चंद्रकान्त बाबू उस हृदयविदारक नज़ारे को नहीं देख सके !

इसी समय माँने भी रोने का नाटक खेलदिया—वह चंद्रकान्त बाबू के पास आकर बैठ गई और बोली:—मैंने चंद्रहार के खोजाने पर दो चार कड़ी बात इसे कही थी—बेटा। बस उसी पर रूठकर मेरे सिर ज़हर पीने बैठ गई। मैंने सोचा, यह यों ही चिढ़ा रही है—पर सचमुच मैं दौड़कर आई तब तक तो यह एक ही घूंट में पी गई। नहीं मालूम यह ज़हर इसने कहां से मँगाया था ?

चंद्रकांत बाबू कुछ नहीं बोले। वह फूटफूट कर रोने लगे। इसी समय मां ने पुनः कहा:—छिः मर्द होकर औरत के लिये रोता है ! ऐसी हज़ारों औरतें तेर एश्वर्य्य के आगे तुझे मिल सकती हैं बेटा !!

एकाएक चंद्रकांत बाबू ने आँखें पोंछडालीं और हीरा से कहा:—हीरा ! दौड़कर तांगा जल्द किराये करलो।

हीरा दौड़ पड़ा-वह भी बेचारा बुरी तरह रो रहा था। चंद्रकांत बाबू ने "बेहोश चंद्रिका" को कंधे पर उठालिया और चुपचाप सीढ़ियां उतर गये। नीचे तांगा तयार था—वे उसमें बैठकर वेग से हॉस्पिटल की तरफ़ चल दिये।

१५

अविश्वास फिर क्यों करूँ—स्वामी कहते थे—" नर्गिश " मेरी बालसखी है—बचपन से मैं उसे जानता हूँ—मेरे सामने वह एक निरी बालिका थी—कई बार गोद में उठाकर—मैंने उसे खिलाया है। जैसा प्रेम बचपनमें था-वैसाही अब भी है। फिर उसे मुसीबत में पाकर पांच सौ रुपये स्वामी ने दे

दिये तो कौन सा बुरा काम किया—इसमें अविश्वास करने की बात ही कौन है ? उस दिन बड़े भय्या मेहमूद के हाथमें इस पांच सौ के पत्र को देखकर व्यर्थ ही-स्वामी पर नाराज़ हो गये। अपने दिल में न मालूम वे क्या समझे होंगे ! किस तरह इस झूठे संशय को बड़े भय्या के दिलसे निकालूँ! आखिर वे जाते समय यह भी तो कह गये थे—"यह घर मनुष्यों के रहने योग्य नहीं रहा है !" यह मेरे स्वामी का अपमान नहीं तो क्या है—क्या चुपचाप जिस तरह वे [रजनी बाबू] निरुत्तर होकर इस अपमान को सह गये मैं भी सहन करलूँ ?

रात्रि के बारह बज रहे थे-सारे शहर की घंटियां एक-एक, दो-दो मिनट के फासले से टनटना रही थीं। रजनी 'कामिनीकांत' के सिरहाने बैठी हुई यही सब बातें सोच रही थी ! आज कल स्वामी अपने भयरोग की चिकित्सा करवा रहे हैं ! जंगल में उन्होंने बंगला लिया है—रात्रिके गहन अंधकार में अकेले वे उस बंगले में जाकर सोते हैं ! डाक्टर ने कहा है कुछ दिन तक तुम अपनी पत्नी से बिलकुल अलग सहवास करो, उन्हीं की आज्ञा से तो वे अकेले पैदल उस बंगले में जाते हैं। हे ईश्वर! स्वामी को इस भयरोग से शीघ्र मुक्त करो। मैं रातभर जागती रहती हूँ-यही खयाल किया करती हूँ—कहीं अँधियारे में ठोकर लगकर वे गिर न गये हों—जंगल में बड़े बड़े विषधर सर्प रहते हैं—चोर डाकू भी अकेले पाकर उनपर हमला कर सकते हैं—फिर इधर मैं विरहिनी रो-रो कर ये विशाल रातें बिताती हूँ-दया करो

भगवन्-मेरे स्वामी की रक्षा करो-उन्हें शीघ्र इस रोग से मुक्त करो !

पर यह क्या रजनी की विचार धारा-किंवाड़ पर जमे हुये एक भीषण धक्के से भंग होगई। रजनी चौंक उठी ! इसी समय बाहर से आवाज़ आयी---" रजनी-रजनी-दौड़कर जल्द किवाड़ खोलो—देखो पुलिस—पुलिस !"

रजनी दाड़ पड़ी-यह क्या इतनी रात में स्वामी और पुलिस ! यहक्या बात है !!

किवाड़ खोल दिये-रजनीकांत बाबू बुरी तरह हांफ रहे थे। रजनी ने भयभीत होकर पूछा:---"मेरे नाथ ! क्या किसी बदमाश ने आपका पीछा किया है-अथवा बंगले पर चोरों ने हमला किया ? आप इतने भयभीत क्यों हैं-जल्द बताओ नाथ मेरे दिल में भयंकर बेचैनी बढ़ रही है ! "

रजनीकांत बाबू ने भीतर की साँकल चढ़ाकर-भर्राई हुई ज़बान से कहा:—"पुलिस मेरा पीछा कर रही है—हाय ! अब मैं क्या करूँ ? मेरी इज्ज़त को बचाओ....रजनी ! वे अधिक नहीं बोल सके-रजनी के गले से लिपट कर रो पड़े !!"

रजनी ने भी स्वामी को हृदय से चिपका लिया-वह गंभीरता पूर्वक—पर तेजी से बोली:—मेरेनाथ ! इस दासी के जीवित रहते आपकी इज्ज़त लेनेका किसका साहस है ! वह कौनसी पुलिस है—जिसने इतना भयभीत आपको बना दिया है ?

रजनी बाबू पूरा उत्तर भी नहीं दे पाये थे कि पुलिस

के कई कर्मचारियों ने एक साथही किवाड़ को धक्का दिया। किवाड़ मज़बूत थे, नहीं तो टूटकर अवश्य ही ढेर हो जाते!

रजनी बाबू पुलिस की आवाज़ सुनकर और भी भयभीत होगये-उनके सर में चक्कर आगया-वे रजनी के कंधे पर मस्तक रखकर पूर्ण बेहोश हो गये।

किन्तु, रजनी क्षणभर के लिये भी भयभीत नहीं हुई। जो सुन्दरी बालिका दस सेर का वजन भी उठाने में हांफ उठती थी। उसकी कमनीय बाहुलताओं में इतना बल इस समय न मालूम कहाँ से आगया! वह स्वामी को कंधे के सहारे उठाकर शीघ्रता से ऊपर कमरे में चढ़ गई। उन्हें सुन्दर सजी हुई चारपाई पर लेटा कर रजाई से ढांक दिया।

समय मुसीबत का था—शर्म से काम नहीं चल सकता था! रजनी बेंगालिन बालिका थी—उसमें साहस की कमी नहीं थी। बिजली का टॉर्च जलाकर वह शीघ्रता से नीचे उतर गई। किवाड़ खोल दिये और शानदार गंभीर मुख मुद्रा से खड़ी होगई।

फिर रजनी ने बड़ी शान के साथ पूछा:—इस समय मेरे आनन्द में खलल देने वाले आप कौन महानुभाव हैं?

वेग से दो कदम आगे बढ़कर रजनी के सन्मुख आते हुवे पुलिस इन्स्पेक्टर ने ठिठक कर कहा। इस घर के मालिक ने बड़ा भीषण जुर्म किया है!

रजनी इस विकट परिस्थिति में भी जोर से हँस पड़ी-

फिर ठहर कर बोली:—

"क्या किसी की चोरी की है—अथवा जेब काटी है?"

इन्सपेक्टर:—ये सब तो मामूली जुर्म हैं—उसका जुर्म क्या है, इसे अदालत में जब सात सालकी सज़ा का हुक्म उन्हें होगा—तब आप समझेंगी।

रजनी दिल में भय से कांप उठी। ऐसा क्या जुर्म है, जिसमें सात साल की सज़ा होगी—क्या किसी का खून किया है? किन्तु समय अफ़सोस करने का नहीं था—रजनी सख्ती से बोली:—साफ साफ कहिये, मुझे आपकी ये बनावटी बातें कुछ समझ में नहीं आतीं।

इन्स्पेक्टर बड़ी देरतक रजनी की अलौकिक रूपराशि निहारता रहा। फिर गंभीरतापूर्वक बोला :—क्या आप उनकी पत्नी हैं—सुनिये, आपके पतिदेव की नराधम लीला! मेहमूद की बहन नर्गिश को तो आप जानती नहीं होंगी। उनकी शादी यहीं पर एक मोलवी के साथ हुई है। बेचारे मोलवी ४ दिन से बाहर गाँव किसी काम से गये थे—वे आज लौट कर घर आये तो उन्होंने देखा—आपके पतिदेव उस बेचारी अबला पर बलात्कार.....बस इससे अधिक नहीं कह सकता बताओ वह नर पिशाच कहां छिपा है?

रजनी वेग से खिल खिलाकर हँस उठी और बोली:—

आप कहीं नशा करके तो नहीं आये हैं! मेरे स्वामी चार दिन से अस्वस्थ घर में पड़े हुये हैं। बेवकूफों! लौट जावो—मुझे अगर यह मालूम होता कि तुम लोग बातलें कसकर आये

हो तो मैं हरगिज़ अपने आनंद भवन से नीचे उतर कर नहीं आती !

रजनी ने अब आंखों से क्रोध की चिनगारियां बरसाना शुरू करदीं—फिर गर्ज़कर कहा:—साथही तुमने जो मेरे स्वामी पर—"बलात्कार" का झूठा इलज़ाम लगाया है, उसका भी ज़वाब तुम्हें अदालत में देना होगा !

रजनी वेग से किंवाड़ बन्द कर जाने लगी—किन्तु इन्स्पेक्टर ने किंवाड़ पकड़ लिया और दो कान्स्टेबलों को मकान में घुसकर मुलाज़िम को पकड़ने का हुक्म दिया !

किन्तु रजनी अपनी दोनों सुकुमार मुष्टियों से किंवाडों को बलपूर्वक पकड़ कर खड़ी हो गई और गर्ज़ कर कहने लगी:—देखती हूँ तुम किस तरह एक रईस के घर में बिला वज़ह ज़बरन घुस सकते हो ! इस समय वे बीमार हैं—शयन कर रहे हैं—उनके आनन्द में खलल डालनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है—सुबह तुम आसकते हो !

इन्स्पेक्टर साहब रजनी के साहस को देखकर हुकूमत चलाना भूल गये ! उन्होंने अत्यंत नम्रता से कहा:—तब उनकी ज़मानत दिलवादो ! इन्स्पेक्टर ने देखा, रजनी की आंखों से दो बूँद आंसू टपक पड़े ।

इसी समय बादलों में से चमकती हुई बिजली की तरह रजनी बोली:—जमानत—स्वामी की जमानत क्या चाहते हो ? यह मकान लिखलो—सारी मिल्कियत लिखलो—और अधिक चाहो तो मुझे लिखलो—मैं सही कर दूंगी ! !

दिल को बहुत रोका पर वह अब नहीं रोक सकी उसकी आंखों से अश्रुधारायें वह चलीं—वह फिर बोली:—जल्द लिखो इन्स्पेक्टर ! जमानत पत्र पर मैं सही करने को तैयार हूँ !

इन्स्पेक्टर—रजनी की देवलीला को देखकर स्तब्ध से रहगये—उन्होंने सब कर्मचारियों को वापस लौट चलने का इशारा कर दिया—इन्स्पेक्टर शीघ्रता से जिधर से आये थे उधरही चल दिये। जाते समय उन्होंने इतनाही कहा—"देवी, तुम्हारी ज़बान को जमानत की ज़रूरत नहीं है !"

रजनी भी इन्स्पेक्टर की इस उदारता को देखकर अवाक-सी रहगई ! क्या पुलिस के दिल में भी दया होती है ? सब कोई चले गये थे—पर रजनी फाटक पर खड़ी हुई भांति भांति की कल्पनायें सोचकर बड़ी देर तक आँसू बहाती रही ! "रजनी" को उस घोर रजनी में भी कुछ भय मालूम नहीं हुआ—न मालूम कबतक वह आँसू बहाती ही रही ! बीच बीच में वह बोल उठती थी—"नर्गिश" क्या सचमुच "नर्गिश" कोई अमूल्य ज़वाहरात है, जिसने मेरे स्वामी को लूट लिया ! क्या यह सच है !!

१६

अदालत खचाखच भरी थी—यह आज इतनी भीड़ क्यों ? चपरासियों से पूछने पर वे कहते—आज, "बलात्कार" का मामला है ! भीड़ बढ़ती ही गई !

ठीक समय पर मेजिस्ट्रेट साहब भी पधारे—अदालत की चहल पहल को देखकर उन्हें भी विस्मय हुआ !

अदालत में एक तरफ़ एक सफेद बुरकापोश महिला खड़ी थी—उसकी बाजू में एक अधेड़ मौलवी। दूसरी बाजू पुलिस इन्स्पेक्टर के पास एक नवयुवक अत्यंत उदासीन मुखमुद्रा से नीचे सिर किये खड़ा था। युवक की दाहिनी बाजू में अर्द्ध घूंघट निकाले एक तरुण बालिका खड़ी थी—उसके हाथ में एक रुमाल था, जिससे कभी कभी वह अपनी आँखें पोंछ लिया करती थी।

मेजिस्ट्रेट साहब अपनी ड्रेस बदल कर—वही अदालती ड्रेस याने काला झालरदार बड़ा चोंगा—सिर पर जमे हुवे नकली भूरे बाल का टोप—और आँखों पर ऐनक चढ़ाकर—अपनी कुर्सीपर आ बैठे। सब ने उठकर उन्हें आदर दिया।

फिर एकदम गंभीरता छागई—पुलिस इन्स्पेक्टर ने आगे बढ़कर मामला पेश किया।

रिपोर्ट पढ़कर मेजिस्ट्रेट साहब ने एकबार चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई। सहसा एक तरफ़ उनकी आँखें ठहर गईं—वे चौंक उठे। पहले आँखों का भ्रम समझा—फिर ऐनक उतार कर देखा—पर वह भ्रम नहीं, जो देखा वह सच था। एक दीर्घ श्वास लेकर—मॅजिस्ट्रेट साहब ने आँखें मूँदलीं।

मुलज़िम कटघरे में खड़ा किया गया। इसी समय—मेजिस्ट्रेट साहब ने आँखें खोलीं—वे शीघ्रता से बोले:—आप जानते हैं मुलज़िम स्वर्गीय एडव्होकेट जनरल के पुत्र हैं-इसके सिवाय स्वयं भी एडव्होकेट हैं—उन्हें कटघरे में खड़े

रखना कानूनन जायज़ नहीं है। उन्हें बैठनेको कुर्सी देने की मैं इज़ाज़त देता हूँ!

मुलज़िम को कटघरे से अलग कर, कुर्सी दी गई-पर वे नहीं बैठे—उनके पीछे खड़ी हुई युवती भी नहीं बैठी।

बहस चालू हुई—पर फर्यादी के वकील के एक भी प्रश्न का उत्तर मुलज़िम ने नहीं दिया। फिर गवाहियां हुईं और अपराध पूरी तरह मुलज़िम पर सिद्ध होगया।

वह युवती जो मुलज़िम के पीछे खड़ी—अब तक आँसू पोंछ रही थी—पर अब सिसकियां भरने लगी।

फर्यादी के वकील ने—"बलात्कार" की धारा लगाते हुवे आरोपी को उचित दंड देने की मेजिस्ट्रेट साहब से प्रार्थना की। मेजिस्ट्रेट साहब क्या फैसला देते हैं इसी तरफ़ सबका ध्यान लगा हुआ था। सब कोई कहने लगे:—इस जुर्म में सात साल से कम सज़ा नहीं होगी।

"सात साल" की चर्चा बड़े ज़ोर से चलने लगी—यह सब कुछ उस युवती ने भी सुन लिया था। आँसू पोंछकर वह शीघ्रता से मेजिस्ट्रेट साहब के सामने आकर खड़ी हो गई—उसने अपना घूँघट एकदम हटा दिया—फिर हाथ जोड़ कर घुटने टेक कर अत्यंत करुण ज़बान से वह बोली:—बुद्धिमान मेजिस्ट्रेट! इस समय आप न्याय के सिंहासन पर बैठे हैं। मैं अभागिनी इनकी स्त्री हूँ। मुझे विश्वास है—यह सारा मामला जाली है—न्याय कीजिये—मेरे स्वामी पर रहम कीजिये! इतना कह कर वह युवती फूट-फूट कर रोने लगी।

रजनी का घूंघट-विहीन मुखड़ा—मेजिस्ट्रेट साहब ने देखा—वकीलों ने देखा—और तमाशबीनों ने देखा। सब कोई कहने लगे:—इस शरद पूर्णिमा के चांद को भूलकर-अभागे को कहां एक मुसलमान के घर, कंकड़ पर डाका मारने की दुर्बुद्धि सूझी!

सब कोई उस युवती के करुण रुदन को देखकर दुःखी-हुये। इसी समय उस युवती ने मेजिस्ट्रेट साहब का पांव पकड़ लिया—उनके कदमों पर अपना अश्रुपूर्ण मुखड़ा भेंट कर दिया। फिर वह क्षीण आवाज़ में बोली:—क्षमा करो प्रभू—मेरे सौभाग्य पर इतना भीषण वज्र न गिराओ! मेरे संसार को अंधकारमय न बनाओ!!

मेजिस्ट्रेट साहब की देशी जूताजोड़ी—उस युवती के अश्रुप्रवाह से भीग गई! करुण दृश्य को देखकर सबका दिल भर आया—"आह! कैसी सती साध्वी स्त्री है" कहते हुये कई एक दर्शक अपनी आँखों के आँसू पोंछने लगे।

अधिक समय तक मेजिस्ट्रेट साहब भी नहीं देख सके—उन्होंने उस युवती को अपने पांवों से अलग उठाते हुये एक दीर्घ श्वास लेकर कहा:—"रजनी.....!"

"रजनी" इस शब्द को सुनकर युवती चौंक कर खड़ी—होगई—फिर ध्यान से मेजिस्ट्रेट साहब की तरफ़ देखने लगी—सहसा शरीर का रोम रोम कंपित हो उठा—आँखें जो क्षण भर के लिये रुकी थीं—फिर बरसाती बादलों की तरह उमड़ आईं—आँसू बरसने लगे—हृदय में उत्सुकता बढ़ी! कौन—

बड़े भैया—हम अनाथों के रक्षक—पतितों के भगवान्!! हां, मैं वही आपकी छोटी बहू—"रजनी" हूँ, जिसकी कलाई से उस दिन खून बहता देखकर आपने रूमाल बाँधा था। आज मैं आपके चरणों की धूलि को मस्तक पर चढ़ाकर दया की भिक्षा मांग रही हूं-क्या अब मुझ अभागी के लिये आपके हृदय में उतना स्नेह नहीं रहा है ? बोलो-बोलो-बड़े भैया-जल्द जवाब दो-आपके अगणित अपराध हमने किये होंगे पर आप हमेशा क्षमा करते रहे हो-क्या आज भी-उसी हृदय से-उसी प्रेम से हमे क्षमा न करोगे ? उनका मस्तक इस भरी अदालत में नीचा देखकर—भी आप मौन क्यों हो ?

रजनी उत्सुक नज़रों से उत्तर की प्रतिक्षा करने लगी—पर जवाब नहीं मिला—सिर्फ रजनी ने देखा—मेजिस्ट्रेट साहब की आँखों में दो बूंद आँसू थे !

मेजिस्ट्रेट साहब ने कलम उठाई और फैसला लिख दिया। क्लर्क पढ़कर सुनाने लगा—सब तरफ सन्नाटा छागया।

"चूँकि फर्यादी एक खानदानी घराने की परदेनशीन महिला है और वह खानगी या खुली, किसी भी अदालती कारर्वाई में भाग लेना नहीं चाहती—किन्तु उसका अदालत में आकर उपस्थित होना ही यह सिद्ध करता है कि उसकी फरयाद जाली नहीं है। फिर पुलिस की गवाहियां और दूसरी साक्षियां भी आरोपी के जुर्म को सिद्ध करती हैं। इसके सिवाय—आरोपी का मौन रहना—इस जुर्म का समर्थक है ! किंतु फर्यादी अपना मौखिक बयान देना नहीं चाहती—इसलिये जुर्म की संगीनता सिद्ध नहीं हो सकती ! मैं इस जुर्म के लिये पांच

साल की सख्त सज़ा उपयुक्त समझता हूं।"

फैसला सुनतेही पुलिस के दो कान्स्टेबिल हथकड़ियां लेकर आगे बढ़ चले—मेजिस्ट्रेट साहब ने रूमाल से आँखें मूँदली। रजनी कांप उठी—निष्ठुर बड़े भैया—क्या आपके हुक्म से—और मेरे स्वामी को हथकड़ियां पहनाई जावेंगी—? नहीं बोलते—क्या उन्हें अब भी नहीं बचाओगे? मैं आज बेशर्म होकर दया की भिक्षा मांग रही हूँ—आखिर वे भी आपके छोटे भाई हैं—उठो, उन्हें बचालो!!

पर मेजिस्ट्रेट साहब ने आँखों से रूमाल नहीं हटाया। फिर रजनी ने देखा—"स्वामी की आँखों से अश्रुधारायें बह रही हैं—पुलिस वाले उनके अत्यंत निकट जाकर—हाथ आगे बढ़ाने को सख्ती कर रहे हैं।"

यह क्या—एक कान्स्टेबुल ने ज़बरन उनका हाथ पकड़ लिया! दूसरे ने हथकड़ी सम्हाली—और वह निर्दय उन्हें पहनाने लगा!

रजनी भूखी शेरनी की तरह झपट पड़ी—उसने छीन कर हथकड़ी फेंक दी—उसकी साड़ी बड़ी दूर तक फर्शपर लोट रही थी। वह स्वामी के आगे पुलिस की तरफ़ मुँह करके खड़ी हो गई—उसने अपनी सुकुमार कलाई पुलिस के आगे बढ़ा दी! फिर बोली:—डरते क्यों हो—पहले वह ज़ेवर मुझे पहनाओ—स्वामी भी तो कोई नया ज़ेवर घर में लातेही पहले मुझे पहनाते थे। तुम भी पहले मुझे पहनाओ—फिर मुझे काल-कोठरी में या जहां जी चाहे, बंद करदो! मेरे सामने

स्वामी को ये हथकड़ियां नहीं पहनाने दूँगी !

पुलिस इन्स्पेक्टर की आँखो में भी आँसू भर आये—किन्तु वे सरकारी हुक्म को एक मिनट के लिये भी नहीं रोक सकते थे। सहसा रजनी ने पीछे फिरकर देखा—एक कान्स्टेबल ने शीघ्रता से उसके स्वामी के एक हाथ में हथकड़ी पहनादी !

" आह—स्वामी—मेरे जीवनसर्वस्व—आपकी यह हालत देखने के पहिलेही मेरे प्राण क्यों नहीं निकल गये ? रजनी उसी क्षण स्वामी के चरणों पर गिर पड़ी !!

मॅजिस्ट्रेट साहब भी अदालत के अधिकार को भूल गये उन्होंने दौड़कर रजनी को ज़मीन से उठा लिया—फिर मित्र की तरफ़ देखकर कहा:—" रजनीकांत"—बस इतना ही कह पाये थे कि मेजिस्ट्रेट साहब का गला भर आया !

किन्तु रजनीकांत की हालत कुछ औरही थी— उनकी आंखों में—अफसोस नहीं था—दुःख नहीं था—और इस समय आँसू भी नहीं थे। उन्होंने एक तीव्र दृष्टि से मेजिस्ट्रेट साहब की तरफ़ देखा और मुँह फेर लिया।

रजनी को एक टेबल पर लेटाकर—मेजिस्ट्रेट साहब पास ही खड़े हो गये। पुलिस वाले " रजनी बाबू " को अदालत से ले जाने लगे—किन्तु इसी समय—उस बुरकापोश महिला ने—बुरका निकालकर फेंक दिया—वह दौड़ पड़ी—उसने पुलिस को संबोधित कर कहा:—"ठहरो !"

सब कोई चौंक पड़े—उस बीबी का शौहर मौलवी भी चौंक उठा!

उस महिलाने आगे बढ़कर कहा:—" मेरी फरियाद झूठी है—बनावटी है—यह जबरन मेरे शौहर ने मेरे अँगूठे की निशानी लेकर की है। रजनीकांत बाबू को मैंने ही बुलाया था—वे निर्दोष हैं।"

सब कोई अवाक् से रह गये—मौलवी साहब का खून उबल पड़ा। वे जेब से चाकू निकाल कर झपट पड़े—पर पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया।

फैसला बदल गया—सिर्फ एक हजार रुपये का जुर्माना रजनीबाबू पर किया गया। खून का इरादा करने वाले शौहर साहब को पांच हज़ार की ज़मानत दाखिल करने तक हवालात में रहने का हुक्म हुआ।

रजनीबाबू की हथकड़ियाँ खुल गईं। इसी समय वह महिला बोली:—यह जुर्म " नर्गिस " का था—फिर जुर्माना भी नर्गिस ही देगी।

सोने की चूड़ियाँ और हीरे के कर्णफूल खोलकर उसने जुर्माने की भरपाई में मेजिस्ट्रेट साहब के सामने फेंक दिये।

रजनीकांत " नर्गिस " के साहस को देखकर आनंद से फूल उठे—उनके मुँह से सहसा सुनाई दिया—" समय पर जो काम आता है वही सच्चा मित्र होता है।"

यह वाक्य मेजिस्ट्रेट साहब ने भी सुना उनके हृदय में विषैले तीर की तरह चुभ गया। रजनी—

बाबू शीघ्रता से अदालत के बाहर होगये। बाहर मेहमूद मोटर लिये खड़ा था—रजनी बाबू को देखकर वह हँस उठा। "नर्गिस" भी खिलखिला कर हँस पड़ी। वे तीनों उस मोटर में बैठकर रवाना हो गये—सब कोई इस आश्चर्य्यमय व्यापार को देखकर अवाक् से रह गये! हवालात को जाते हुये मोलवी साहब ने भी—"नर्गिस" को मोटर में बैठते हुये देखा—उनके कलेजे में सहस्रों बर्छियों के ज़ख्म सी वेदना होने लगी—पर वे दांत पीस कर रह गये।

धीरे धीरे अदालत में सन्नाटा छा गया—मॅजिस्ट्रेट साहब ने अपनी अदालती ड्रेस उतार दी और अब वह "चंद्रकांत" मात्र रह गये! इसी समय "रजनी" की बेहोशी दूर हुई चंद्रकांत बाबू रजनी के सामने एक कुर्सी पर बैठे थे!

रजनी ने उठते ही पूछा:—उनका क्या हुआ—क्या पुलिस उन्हें पकड़ ले गई?

आँखों में आँसू भर कर चंद्रकांत बाबू बोले:—नहीं, वे मुक्त हो गये हैं।

रजनी:—क्या आपकी कृपा से?

चंद्रकांत:—नहीं।

रजनी:—तब फिर वह ऐसा उपकारी पुरुष कौन था जिसने मेरे स्वामी को इस भयंकर खतरे से बचाया?

चंद्रकांत की आँखों से आँसू बरसने लगे—इसका उत्तर उन्होंने कुछ नहीं दिया।

रजनी ने आश्चर्य्य से पूछा:—आपकी आँखों में फिर

ये आँसू क्यों हैं—बड़ी दीदी तो खुश है—इन्दू भी प्रसन्न होगी ? हम लोगों से आजकल आपने इतना सम्बन्ध विच्छेद क्यों कर लिया है ? हमें दुःख में आपही का तो एकमात्र सहारा है।

चंद्रकांतः—रजनी ! तुम अत्यंत भोली स्त्री हो—मैं "इन्दू" की तरह तुम्हें प्यार करता हूँ। तुम्हारी तरह तुम्हारी दीदी "चंद्रिका" भी अभागिनी है। तुम दोनों को दुःखी देखकर मैं हमेशा दुःखी रहता हूँ।

रजनीः—क्या हमारे दुःखों का कभी अंत नहीं होगा—आप क्यों व्यर्थ चिंता करते हैं—आजकल तो दीदी भी हमें कभी नहीं याद करती।

रजनी के भोलेपन पर चंद्रकांत बाबू की आँखें आंसू बहाये बिना नहीं रह सकीं—उन्हें रोते देखकर रजनी भी रोने लगी ! फिर बोलीः—बड़े भैया ! आपके आँसू देखकर मैं भयभीत हो रही हूँ—क्या कोई नई विपत्ति तो नहीं आने वाली है ?

चंद्रकांतः—रजनी ! तुम बहू बनकर हिन्दूसमाज में पैदा हुई हो—चंद्रिका भी बहू बनकरही आई है—तुम दोनों की विपत्तियों का अंत चिता में ही होगा—पहले नहीं !

रजनी फिर कुछ नहीं बोली दोनों तांगे में बैठकर चल दिये।

रजनी भांति भांति की चिंताओं में तल्लीन थी—वे अदालत से मुक्त होगये मैं बेहोश थी—फिर मुझे वे इसी हालत

में छोड़ कर अकेले क्यों चले गये ? मालूम होता है बड़े भैया से बोले बिना ही वे चुपचाप चल दिये होंगे—तबही तो बड़े भैया की आँखों में आँसू दिखाई देते हैं। पर नहीं शायद बड़े भैया की शर्महीसे—वे मुझे उन्हीं के भरोसे छोड़ कर चल दिये होंगे। हां—यही शर्म का कारण हो सकता है। पर यह सब चिन्ता तो उनसे मिलने पर मिटेगी। यदि बड़े भैया से बिना बोले ही वे चल दिये होंगे तो मैं उन्हें--बड़े भैया से माफी मांगने भेजूँगी। इसी समय रजनी का घर आगया।

रजनी को उसके घर के पास छोड़ कर चन्द्रकान्त बाबू अपने घर चल दिये। घर में घुसते हुये रजनी ने पीछे फिरकर देखा तो चंद्रकांत बाबू की आँखों से बड़ी बड़ी आँसू की बूँदें टपक रही थीं। तांगा आगे चल दिया—जब तक तांगा दिखाई दिया रजनी-टकटकी लगाये उधरही देखती रही। फिर शीघ्रता से ऊपर मकान में चढ़ गई। स्वामी को किस उदार हृदय ने बचाया—यह जानने की उत्कट इच्छा रजनी के हृदय-मन्दिर में जाग रही थी।

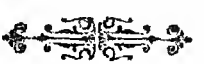

१७

बगीचा छोटा था—पर शानदार था, मध्य में एक भव्य बंगला और बाजू में एक छोटा सा सरोवर था। चांद निकल आया था। सरोवर में पसरी हुई कुमुदनी खिलखिला कर हँस रही थी। भीनी भीनी हवा से उठती हुई तरंगों पर थिरकती हुई कुमुदनी—एक छोटी सी गगरी मस्तक पर

रख कर—मुस्काहट भरी—अल्हड़ चाल से चलती हुई—तरुण बाला की तरह चंचल थी।

सरोवर के चारों तरफ़ की ज़मीन में—कई क्यारियां थीं—जिनमें, गुलाब, मोगरा, चमेली, जूही, आदि पुष्पों की सघन झुरमुटें—सी बनी हुई थीं।

मिलन होगा—और वह भी बड़ी शान के साथ—इन पुष्पलताओं की ओट में—फिर इस निर्मल चांदनी में अठ-खेलियां खेलते हुये सरोवर के तीर पर—और फिर खुले दिल से—उसकी कमनीय कलाइयों के कोमल स्पर्श से!

उसका उभरा हुआ यौवन—गदराये हुए कपोल युगल मंडराई हुई काली केश राशियां—मुस्कराया हुआ मुखड़ा और शरमाई हुई चितवन—वे सब आजही तो जी भर कर देखूँगा!! इन्हीं ऊमंगों में विचार तल्लीन एक युवक सरोवर के तीर पर टहल रहा था।

इसी समय गंभीर चाल से चलती हुई एक मोटर थोड़े से फासले पर आकर रुकी। नाटक की प्रधान नटी की तरह सजी हुई एक नाटी नायिका नीची नज़र से निहारती हुई मोटर से उतरी और उस ड्रायव्हर से पूछा:—"वे कहां होंगे?"

ड्रायव्हर ने सरोवर की तरफ़ इशारा करके मोटर घुमाली और शीघ्रता से लौटा ले गया।

नायिका—आगे बढ़ी—पहले धीरे—और फिर तेजी से! अंत में आगुन्तक युवक के अत्यंत समीप पहुँचकर—

" महमूद पार्क " के मालिक को दासी का सलाम पहुँचे—कहते हुये नायिका शर्म से मस्तक झुकाकर खड़ी होगई। सहसा सरसे साड़ी सरक गई—उस चांदनी रात में—अमेरिकन व्हेसलिन से जमी हुई काली केशरश्मियां—और पावडर से सजी हुई सुराहीदार सुघड़ ग्रीवा के समीप झूलते हुये कर्णफूल—चमक उठे! एक हाथ से साड़ी को सम्हालते हुये दूसरे हाथसे रूमाल की ओट में अपनी मुस्कुराहट को छिपाने का अभिनय खेलते हुये—वह नायिका मुँह फिरा कर खड़ी होगई।

इसी समय नायिका को रूठी जान कर युवक ने कहा:—क्यों रूठ गई " नर्गिस "?

पाठक समझ गये होंगे—युवक रजनीकांत थे। उनके प्रश्न के उत्तर में नर्गिस ने कहा:—क्यों रूठूँगी—दिल में कई एक अरमान भरे पड़े हैं—सोचा था—जब उनको सलाम करूँगी वे हँसकर—मेरी दोनों कलाइयां अपने हाथों से गूँथ लेंगे—फिर हृदय में स्थान देंगे—फिर बाहुपाश के दुःख और सुख सहने होंगे—फिर प्रेम की प्रथम भेंट लेने के लिये मैं मजबूर की जाऊँगी—तब इस रूमाल को बीच में रख कर अपनी रक्षा करूँगी! देखिये इसीलिये तो रुमाल को हाथही में रखे खड़ी थी! पर—मुझ अभागी की किस्मत में कहां प्रणय के दुःख और सुख लिखे हैं!!

नर्गिस रूठ कर आगे जाने लगी—इसी समय रजनीकांत 'ठहरो—ठहरो—क्या इतनेही में रूठ गई—

कहते हुये आगे-बढ़े। उस रूठी हुई सुंदरी को अपनी बाहुपाश में गूँथ लिया—फिर एक बालिका की तरह उसे जमीन से अधर उठा कर रजनीकांत बोले:—प्रेम की भेंट चाहती हो—पर मैं तुम्हें क्या दूँ—शरीर और दिल तो आज अदालत ही में तुम्हें हमेशा के लिये दे चुका था —इसके सिवाय और जो कुछ मेरे पास है उसे भी तुम अपनाही समझो।

नर्गिस:—नहीं ! पुरुषों की ज़बान का कोई एतबार नहीं होता। और फिर मैं तो अछूत ठहरी—आप न मालूम कब मुझे ठुकरादें ।

तो क्या तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं है—चलो बँगले पर मैं तुम्हें अपना दिल चीर कर बता दूंगा !

आप तो इतने ही में नाराज़ होगये डीयर—मैं तो ऐसीही मजाक अक्सर किया करती हूं। छोड़िये—मुझे माफ कीजिये—देखिये ये कितने सुन्दर फूल खिल रहे हैं।

"नर्गिस" ने दो गुलाब के फूल तोड़ कर रजनीबाबू के कोट में खोंस दिये। फिर अनेक फूल, प्रियतम को पुष्पोपहार देने के इरादे से नर्गिस चुनने लगी—किन्तु रजनीकांत नहीं ठहरे—वे तेज़ी से बंगले की तरफ चल दिये। कई तेज बिजलियों से कमरा चमचमा रहा था। मध्य में एक टेबल पर कई तरह के फल और रंग बिरंगी शीशियां सजी हुई थीं। रजनीकांत उसी टेबल के पास कुर्सी पर बैठ गये और एक कागज निकाल कर कुछ लिखने लगे।

लिखते समय रुक कर एक बार सोचने लगे—यह सब लिख रहा हूँ—पर "रजनी" का क्या होगा! "कामिनी" का क्या होगा? फिर सोचा नर्गिस भी तो मेरी ही है जब चाहूँ यह सम्पत्ति मेरी ही रहेगी।

इसी समय दौड़ती हुई "नर्गिस" भी आगई। प्रियतम पर पुष्पों की बरसाद करती हुई वह उछलकर रजनी बाबू की गोद में आ बैठी और एक बालिका की तरह अंग ड़ाई लेते हुये बोली:—अकेले अकेले क्या लिख रहे हो—मुझे भी पढ़ने दो!

नर्गिस कागज़ उठाकर पढ़ने लगी—

प्यारी नर्गिस!

यह 'मेहमूद पार्क'—जिसे मैंने तुम्हारे भाई के नाम से दस हजार रुपयों में खरीदा है—और यह आठ हजार की मोटर ये दोनों चीज़े मैं तुम्हें प्रसन्नता पूर्वक देता हूँ!

इसके सिवाय बैंक में जो बारह हज़ार रुपया और बचा है उसपर भी तुम्हारा अधिकार है—तुम जब चाहो मुझसे खुशीसे या अदालत की मदद से वसूल कर सकती हो!

तुम्हारा सच्चा प्रेमी:—

"रजनीकांत"

पत्र पढ़कर 'नर्गिस' रजनीकांत की तरफ विस्मित नज़रो से देखने लगी—उसने वह पत्र उठाकर—रजनीकांत की जेब में रख दिया। फिर उठकर वह रजनी बाबू के कदमों पर गिर पड़ी और आँखों में आँसू भरकर बोली:—क्षमा कीजिये

इस दासी को—मुझे आपकी संपत्ति नहीं चाहिये—मैं तो आपको चाहती हूँ पर अफ़सोस आप मुझे नहीं मिल सकोगे!

रजनीकांत ने वह दानपत्र पुनः निकालकर "नर्गिस" को दे दिया और कहाः—नहीं मिल सकूंगा—यही तो तुम्हें भ्रम है—लो इसे अपने पास रख लो—जब तुम देखो मैं तुम्हें नहीं मिल सकूंगा, तब तुम इस संपत्ति पर अधिकार करके मुझे मेरे विश्वासघात का बदला देना!

नर्गिस ने वह दान पत्र ले लिया—और कहाः—आप से मिलने का उपाय भी मैंने सोचलिया है—यदि आर्य्यसमाज में जाकर मैं शुद्ध हो जाऊँ तब तो आप मुझे आज़ादी से मिल सकेंगे—फिर तो आप मेरे हाथ से बना भोजन करेंगे?

रजनीकांतः—क्या सचमुच शुद्ध हो जावोगी-फिर मुझसे शादी "करलोगी?

नर्गिस शराब की प्याली भर कर प्यारे के ओठों से सटाते हुये बोलीः—हां-शादी कर लूंगी-पहले पीलीजिए आज आप उदास बहुत मालूम होते हैं।

रजनीकांत पहले भी कईबार शराब पी चुके थे—परवह केवल नर्गिस के प्यार से। आज भी वे उसकी सूरत को देखकर पीगये।

रजनीकांतः—पर आर्य्यसमाज पहली स्त्री के जीवित रहते दूसरी से शादी करने की इज़ाज़त नहीं देता।

नर्गिस हँसकर बोलीः—सिर्फ एक हजार की घूंस-मंत्री के पेट में पहुँचजाने की जरूरत है—आप चिंता न करें! इस

समय तो आप आनंद मनावें।

एक-दो-तीन और चौथी प्याली भी रजनीबाबू के गले के नीचे होकर रही। फिर रजनीबाबू भी प्याली भर कर "नर्गिस" को पिलाने लगे। पर वह भाग खड़ी हुई। रजनीबाबू पर नशे का रंग जमने लगा। वे प्याली हाथ में लेकर नर्गिस के पीछे घूमने लगे। मैं नहीं पीती हूं—मुझे पिलाने से आपका आनंद समाप्त हो जायगा कहती हुई नर्गिस दूसरी तरफ पुनः भाग गई।

"कुछ भी हो, तुम्हें पीना होगा—ठहर जाओ क्या मेरी आज्ञा नहीं मानोगी?" नर्गिस ठहर गई। रजनीबाबूने दौड़कर उसे अपनी बाहुपाश में गूँथली। फिर उसे पासही बिछी हुई शय्या पर बेवश करते हुए ज़बरन उसके मुस्कराहट पूर्ण मुखड़े में वह प्याली उन्होंने उँढेल दी। नर्गिस बोली ठीक है—बड़ी मीठी है—लाइए और लाइए, आज मैं जी भर कर पीऊँगी।

नहीं, तुम तो कहती थीं—आनंद चला जायगा—मैं तुम्हें अधिक नहीं पिलाऊँगा—इस समय तुम कितनी प्यारी मालूम होती हो? उफ़ तुम्हारा आलिंगन कितना आनंददायी है! तुम कब शुद्ध होवोगी? तुम्हारे इन सुघड़ अधरों का, मैं कब सुधापान कर सकूंगा?

रजनीकांत नर्गिस के प्रेम में पागल हो उठे। नर्गिस! तुम मुझे कभी धोका तो नहीं दोगी?

नर्गिस चार क़दम पीछे हटकर खड़ी होगई; फिर

एक "चमचमाती" कटार तानकर बोली—जिसपर आपको विश्वास नहीं उस शरीर को जिंदा रखकर क्या करूंगी ?

नर्गिस ने तेजी से कटार अपने सीने की तरफ तानली—रजनीकांत झपट पड़े। उन्होंने वह कटार छीनली—लाओ वह दानपत्र मुझे दो; मैं बची हुई सारी संपत्ति भी तुम्हें देता हूँ।

नर्गिस के हाथ से दानपत्र लेकर उसमें कुल संपत्ति नीचे और लिख दीया। फिर शराब की प्याली भर के नर्गिस को अपनी गोद में खींचकर वह प्याली उसके ओठों से लगाकर रजनीकांत बोले:—नर्गिस ! क्षमा करो, अब मैं कभी अविश्वास नहीं करूंगा।

नर्गिस हँस उठी। वह पूरी प्याली पीगई। दानपत्र को लेकर अपने ब्लाउज़ की जेबमें रखने लगी।

इसी समय—यह क्या ? सारे कमरे की बत्तियां बुझगई ! एक भीषण धड़ाके की आवाज के साथ एक नक़ाबपोश युवक ने प्रवेश किया। उसने लपक कर नर्गिस की छातीपर पिस्तोल तानदी ! टार्च को जलाते हुए उस नक़ाबपोश ने कहा:—वह दानपत्र चुपचाप मेरे हवाले करो।

नर्गिस चीख उठी—रजनीकांत अवाक—से रहगये ! वह नकाबपोश दानपत्र लेकर शीघ्रता से चला गया। जाते समय उसने नर्गिस से कहा:—यदि दूसरा दानपत्र लिखवायगी तो तुझे जान से हाथ धोना पड़ेगा।

१८

"हां, देख लिया, इन अभागिनी आँखों से स्वामी का विश्वासघात देखलिया! जिस उपकारी व्यक्ति ने उन्हें अदालत के जुर्म से बचाया था—उसे भी देखलिया, पर अफसोस! वही स्वामी का गला काट रहा था!

वह कैसी राक्षसी स्त्री थी! अमृत के भ्रम में हलाहल

की प्याली थी! उसने मेरे भोले भाले स्वामी का धर्म, धन, सब कुछ उन्हें सुरादेवी का भक्त बनाकर छीन लिया। अब मालूम हुआ स्वामी के क्षयरोग का चिकित्सक कौन है? उन्हें हमेशा के लिये पाप और पुण्य के भय से निर्भय बनाने वाला कौन है! चिकित्सक! तुमने स्वामी को क्षयरोग से मुक्त किया—उसके लिये मैं तुम्हारी एहसानमंद हूं—तुमने जिस सुधासिंचित दवा के प्रयोग से स्वामी को रोग मुक्त किया, उसका काफी पुरस्कार उनसे पा लिया! ज़मीन जायदाद, धन संपत्ति सब कुछ तुम्हारी दवा के पुरस्कार स्वरूप तुम्हें, उन्होंने दे दी थी—पर तुम संतुष्ट नहीं हुई। फिर उनके हृदय-मंदिर में भी तुमने स्थान पा लिया। वे तुम्हें देवांगना, स्वर्ग की गरिमा आदि से भी अधिक प्रिय समझने लगे। खाना पीना घर बार, सब कुछ वे तुम्हारे उपकार के पुरस्कार में देकर भूल गये; पर अफसोस, फिर भी तुम्हारे दिलकी प्यास नहीं बुझी!

सच है, प्यास क्यों कर बुझेगी—जिसके दांतों ने मांस का स्वाद चख लिया—उसे केवल मिठाइ खाकर कब संतोष हो सकता है? तुम तो मेरे अमूल्य जवाहरात "स्वामी" के भोले प्राणों की भूखी हो?—तुम उन्हें हमेशा के लिए मुझसे छीनना चाहती हो?

ठहरो, इतनी निष्ठुर न बनो—वह दानपत्र जो मैं तुमसे छीन कर लाई हूं, तुम्हें सहर्ष लौटा दूंगी—इसके सिवाय मेरे निजी ज़ेवर जितने मेरे पास हैं—सब तुम्हें दे

डूँगी—पर दया करो, मेरे स्वामी को मुझसे जुदा न करो !

पाठक समझ गये होंगे, वह नक़ाबपोश, वही साहसी बँगालिन महिला "रजनी" थी ! दिन के बारह बज चुके थे—पर आज आंगन में—किसी ने झाड़ू तक नहीं लगाई थी—पौधों को किसी ने पानी भी नहीं पिलाया था—वे सब मुरझा रहे थे। रजनी दो दिन और दो रात से नहीं सोई थी—घर में दो दिन से भोजन भी नहीं बना था। "कामिनीकांत" डेढ़ साल का हो चुका था—पर अबतक वह मां का दूध पीता था ! दो दिन से उस अभागे बालक की बड़ी बुरी दशा थी। सामने एक बड़े झूले में पड़ा हुआ वह रोरहा था। भूख और प्यास के कारण रो रो कर उसकी आँखें सूजगई थीं। आज रात से ही उसे तेज़ बुखार हो आया था। और इसी लिए वह उस झूले में पड़ा हुवा कराह रहा था। वह पा-पा, मां-मां, आदि प्यारी बोलियां बोलकर-अपनी मां को कैसी भी उदासी में बहुधा हँसा देता था पर हाय ! आज वह भी बीमार था। रजनी को भूख प्यास की सुधि नहीं थी-पर "कामिनी" के लिये चार पैसे का दूध किसी बच्चे के द्वारा उसने मँगा लिया था।

कामिनी बार बार मांकी छाती से चिमट कर दूध खोजता था—पर अफसोस उन शुष्क पयोधरों में कुछ नहीं था। "रजनी" मंगाया हुआ थोड़ा सा दूध कामिनी को पिलाकर ही, जब वह सो चुका था—सामने अपनी चारपाई पर बैठकर ऊपर लिखी हुई भांति भांति की चिंताओं में

निमग्न थी।

दुःख से आँखें झपने लगी। रजनी ने उस तंद्रा में देखा—नर्गिस उसे देखकर हँस रही है।

रजनी फिर एकबार होशोहवास भूलगई। उसने आँखों में आँसू भरकर पूछा:-क्या मेरी प्रार्थना पर तुम्हें रहम नहीं है बहिन! इसतरह मुझ दुःखिया के रुदन पर तुम्हें हँसी क्यों कर आई?

नर्गिस खिलखिलाकर हँस उठी और व्यंग पूर्वक बोली:—मुझे हँसी आती है तेरी मूर्खता पर; तूने वह दानपत्र मुझसे छीना—पर देख, मैंने यह दूसरा लिखवा लिया है—उसमें तेरे निजी ज़ेवर तक मैंने छीन लिये हैं। इसके सिवाय तेरे स्वामी को मैंने नहीं छीना-वे स्वयं मेरे क़दमों की धूल चाटने आये हैं। मैं उनके प्रेम की भूखी नहीं;पर पैसे की भूखी हूं। इसके सिवाय एक काफिर को मुसलमान बनाने में—कितना सबाब मिलता है—जन्नत में तख्त और ताज मिलते हैं-इसे तू नहीं जानती पगली! रजनी कांप उठी। क्या स्वामी को तू मुसलमान बनायेगी? "हाँ—बना चुकी हूं—विश्वास नहीं हो तो देख!"

रजनी ने देखा-नर्गिस खड़ी है। उसके हाथ में शराब की प्याली है। शराबकी एक घूँट पीकर वह जूठी प्याली स्वामीके ओंठों से उसने सटा दी। फिर विष भरी बाहुपाश स्वामी के गले में उसने डाल दी! वे कुछ नहीं बोले—चुपचाप पी गये! इसी समय नर्गिस ने एक भीषण अट्टहास

मुस्लिम युवती "नर्गिस"

एक काफिर को मुसलमान बनाने में कितना सवाब मिलता है !
जन्नत में हूरा और ताज़ मिलते हैं !!

सरस्वती-प्रेस, काशी।

किया और अपने बायें हाथ का अँगूठा "रजनी" को दिखाकर कहा:—अब तो जाना, मैं क्यों हँसती हूं ?

इस अभिनय को रजनी अधिक नहीं देख सकी—"हा स्वामी ! मुझ अबला से यह कैसा भीषण विश्वासघात"—कहती हुई वह उस चारपाई पर गश खाकर गिर पड़ी।

बड़ी देर तक वह दुखिया उसी दशा में पड़ी रही-सहसा किसी के स्पर्श से वह चौंक उठी। रजनी ने बिजली की तरह चौंककर आँखें खोलदीं—देखा तो मेहमूद !

कामातुर महमूद रजनी के पलंग पर बैठकर उसे अपनी भुजाओं के आलिंगन करने का प्रयत्न कर रहा था।

रजनी क्षण भर में पलंगपर से दो हाथ दूर खड़ी हो गई-फिर आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ बरसाती हुई गर्जकर कहने लगी:—चोर की तरह मेरे घर में घुसकर आने वाले शैतान ! तू यहाँ क्यों आया है ?

हँसते हुए मेहमूद ने दौड़कर—रजनी की दोनों कलाइयां पकड़लीं और व्यंग पूर्वक कहा:—तुमसे प्यार करने—तुम्हारे पति के शीघ्र मुसलमान होने की तुम्हें खबर देने।

रजनी ने भूखी शेरनी की तरह मेहमूद के हाथ को दांतों से चबा डाला। मेहमूद चिल्लाकर दो क़दम पीछे हट गया-इसी समय रजनी ने दौड़कर चारपाई के सिरहाने रखी हुई पिस्तौल को निकाल कर मेहमूद पर दाग दी-किन्तु दुर्भाग्य से उसमें कार्तूस नहीं था !

रजनी अब भयभीत हुए बिना न रह सकी। मेहमूद फिर हँसता हुआ आगे बढ़ा और कहने लगा:—आह! आपके दांतों द्वारा चबाये जाने पर भी मुझे कितना आनन्द हुआ—आपकी इस चाँद-सी सूरत पर बिखरे हुए बाल कितने प्यारे लगते हैं! इस तरह पति के नाम पर कब तक मरा करोगी? इस समय सारी संपत्ति मेरे हाथ में है—सोच लो; इस घर में अब तुम्हारी इज्ज़त नहीं हो सकेगी!

नरपिशाच! चांडाल! मेरे घर से चलाजा—मैं तेरी कोई बात सुनना नहीं चाहती।

किन्तु वह नर-पिशाच उस अबला पर अत्याचार करने बाज़ की तरह झपट पड़ा। इस छीना झपटी में—रजनी की मोतियों की माला टूटकर मेहमूद के हाथ में आगई।

बचने का कोई उपाय न देख रजनी—आँखों में आँसू भरकर मेहमूद के क़दमों पर गिर पड़ी और पाँव पकड़कर बोली:—मुझ दुःखिया को न सताओ .....!

रजनी इतनाही बोल पाई थी—कि मेहमूद ने किसी के आने की आहट सुनी। मेहमूद के होश उड़ गये—जिस व्यक्ति को उसने देखा—उसे देखकर वह गिरते गिरते बचा; किन्तु, शीघ्रही सम्हल कर उसने अपना पाँव 'रजनी' के हाथों से छुड़ा लिया।

रजनी ज़मीन परही मस्तक टेककर रोती रही—मेहमूद ने कड़ी ज़बान से बात बदलकर कहा:—लो, मुझे तुम्हारे ये ज़ेवर नहीं चाहिये। दुराचारिणी स्त्री! मेरे स्वर्णसे

अबला

रजनी

शैतान

मेहमूद

रजनी ने बिजली की तरह चौंक कर आँखें खोल दीं—देखा तो मेहमूद !

...प्रेस, काशी ।

मित्र से तू संतुष्ट नहीं हो सकी-तो मेरी होकर क्या रहेगी ? मैं तेरे इस झूठे प्यार पर लात मारता हूँ ! मुझे खिड़की से झांककर तू ने बुलाया वहीं मुझे संदेह हुआ था—पर तेरी आँखों में आँसू देखकर मैंने सोचा था, शायद कोई विपत्तिकी वजह से तू मुझे बुला रही है ।

मेहमूद उस मोतियों की माला को फेंककर शीघ्रता से कमरे के बाहर हो गया । रजनी पत्थर की प्रतिमा की भाँति यह सब बातें सुनती रही । इसी समय भीषण क्रोध की प्रतिमूर्ति रजनीकांत ने वेगसे कमरे में प्रवेश किया ।

रजनी कांप उठी—उसकी घिग्घी बँध गई—वह नहीं बोल सकी !!

" बदजात—कुलांगार—कुलटा—निकलजा मेरे घर से, मैं तेरे इस भोले भाले मुखड़े में छिपे हुए विष को नहीं देख सका था "

स्वामिन् ! यह क्या ? मुझे जान से मार डालिये पर ऐसे अनुचित शब्द न बोलिये ! आह प्राणनाथ ! मुझ दुःखिया की बात भी तो सुनिये !

इस समय रजनीकांत का क्रोध और भी भड़क उठा; खूंटी से कोड़ा उतारकर उस—" हिन्दू समाज की भोली गाय " पर वे टूट पड़े ।

रजनी खून से तर हो गई, पर उसने स्वामी का पाँव नहीं छोड़ा । सारा आंगन उस भूखी-प्यासी दुखिया के निर्दोष रक्त से रंग गया; पर उस फौजी क़ानून

की अपराधिनी की फ़रयाद सुनने वाला उस परमपिता के सिवा कोई नहीं था।

रजनी ने स्वामी का पांव नहीं छोड़ा। वह अधिक चिल्लाकर रोई तक नहीं। इसी समय रजनीकांत ने गर्जकर कहा:—" छोड़ दे, मेरे पांव को स्पर्श करने का अधिकार अब तुझे नहीं है।"

रजनी ने पांव छोड़ दिया। इसी समय रजनीकांत फिर बोले—" क्या तू अब भी सती है? क्या मेरी आज्ञा मानेगी?"

रजनी क्षणभर के लिये सब दुःख भूलगई। वह अभागिनी खड़ी हो गई। फिर अत्यंत क्षीण, पर प्रेमयुक्त स्वर से बोली:—" आह! आपके मुँह से 'सती' शब्द को सुनकर मुझे कितना आनन्द हुआ है! कहिये नाथ! आपकी क्या आज्ञा है? आपकी आज्ञा पर मैं अपना सर भी दे सकती हूँ!!"

रजनीकांत—" कुलटा! मैं चाहता हूँ, तू किसी कुँए में जाकर डूब मरे और फिर मुझे अपनी यह चांडाल सूरत कभी न दिखाये।"

" स्वामिन! आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है, पर हाय! मरने पर भी आपके हृदय में, मैं कुलटा ही बनी रहूँगी! आह! कितना असह्य दुःख है! कुलटा के प्राण भी कितने कठोर होते हैं—नहीं निकलते—आह स्वामी! आप चिंता न करें! यह कुलटा अब आपको अधिक दुःखी नहीं

करेगी।"

रजनी बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। रजनीकांत शीघ्रता से दांत पीसते हुए घर से बाहर हो गये।

१९

"प्राणेश ! मुझे बचाओ, आह ! इन राक्षसों ने मुझे इस अग्निकुंड में ढकेल दिया। मैं जल रही हूं—क्षण भर में राख हो जाऊँगी।" चन्द्रिका एक भयंकर स्वप्न को देखकर छटपटाती हुई शय्या से ज़मीन पर गिर पड़ी।

चंद्रकांतबाबू नींद से चौंककर उठ बैठे। उन्होंने

शीघ्रता से चंद्रिका के मस्तक को अपनी गोद में उठा लिया। फिर विस्मित होकर बोले—"कैसा अग्निकुंड ? कहाँ है राक्षस ? तुम्हें क्या हो गया प्रिये ! तुम इतनी भयभीत क्यों हो ? देखो तुम्हारे मुँह पर अगणित श्वेत बूँदे उमड़ आई हैं ! आँखें खोलो, भय की कोई बात नहीं है।"

चंद्रिका भयभीत होकर स्वामी की छाती से लिपट गई; उसके हृदय की धड़कन पूर्ववत् थी। वह अब भी कांप रही थी। चंद्रकांतबाबू ने "चंद्रिका" के मुँह का पसीना पोंछते हुए धैर्य्यपूर्वक पूछा:—"क्या, कोई स्वप्न देखा है ?"

चंद्रिका भयभीत स्वर से बोली:—हाँ, स्वामिन ! बड़ा भयंकर स्वप्न देखा है ! आपने कल कहा था, 'डाक्टरों ने तुम्हें कुछ महीने तक काश्मीर रखने की सलाह दी है। स्वप्न में मैं आपके साथ काश्मीर चली गई। आप तारीफ़ किया करते थे काश्मीर, बड़ा सुन्दर प्रदेश है। हरी भरी सघन वाटिकायें और केशर की क्यारियाँ सैकड़ों माइल तक छाई हुई हैं। वहाँ तरह तरह के स्वादिष्ट हरे फल-फूल बहुतायत से होते हैं। वहाँ की जलवायु और प्राकृतिक दृश्यावली अत्यंत रमणीय और नन्दन-वन-सी सुन्दर होती है। पर वहाँ जाकर देखा तो सब चीजें विपरीत मिलीं। पृथ्वी ऊसर थी, कहीं घास का एक तिनका भी नहीं था। पशु, पक्षी, मनुष्य, कोई नहीं थे। गांव की खोज में घूमते-घूमते दो पहर हो गया; पर कहीं एक झोपड़े का भी पता नहीं

लगा। "इन्दू" मेरी गोद में थी; वह भूख और प्यास से रो रही थी। मैंने आप से पूछा:—"स्वामी! यह कैसा काश्मीर प्रदेश है" आपने कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने देखा, आपकी आँखों में आंसू थे। मैंने फिर पूछा:—"क्या प्यासे हो? क्या भूख लगी है?" पर आप फिर भी नहीं बोले। मेरा भी गला सूख रहा था। इन्दू के तो आँखों में प्राण था। इसी समय आप—'हा सर्वनाश हो गया' कहते हुए जमीन पर गिर पड़े। मैंने आपके मस्तक को गोद में लेकर बहुत कुछ विलाप किया; पर आप नहीं बोले। आपकी जबान पर अँगुली फिराकर देखा तो, वह सूखी हुई थी। मैं इन्दू को आपके पासही रखकर पगली की तरह पानी की तलाश में दौड़ पड़ी। कई माइल तक मैं भागती रही; मेरे पांव कंकड़ों और काटों से छिल चुके थे; रक्त बह रहा था; पर मैं भागती ही गई। इसी समय मुझे एक बाग दिखाई दिया। मैं उसमें घुस गई-पर वहाँ की सब चीजें विचित्र थीं। वृक्ष लाल थे, पृथ्वी लाल थी और नर-मुंडियों के रूप के बड़े बड़े विचित्र फल वृक्षों में लटक रहे थे।

"पानीकी बड़ी बड़ी तराइयाँ भरी थीं; पर वे भी सुर्ख थीं। पानी देखकर मैं बेतहाशा दौड़ पड़ी। पर अफसोस बर्तन मेरे पास नहीं था। मैंने अपनी आधी साड़ी फाड़कर उस लाल तराई में डाल दी। पर यह क्या! मैंने हाथ डाला तो वह झुलस गया—सारा हाथ अत्यंत दुर्गन्धित रक्त से रंग गया—इसी समय दो भीमकाय राक्षसों

ने विकट अट्टहास करते हुए मुझे पकड़ लिया। वे मुझे अपने स्वामी के पास ले गये। चोरी से बगीचे में आने के अपराध पर उन्होंने मुझे अग्निकुंड में डालकर मारने की सज़ा दी।

"एक भीषण अग्निकुण्ड वहीं उसी क्षण तैयार हो गया। फिर मुझ से पूछा गया:—'अंतिम क्या इच्छा है?' मैंने उस दैत्यराज के चरणों में लोटकर कहा:—'मेरे स्वामी और मेरी प्यारी इन्दू को एक बार देखना चाहती हूँ।' दैत्यराज ने अँगुली उठाकर इशारा किया। मैंने देखा—लाल-लाल गरम लोहे के जालीदार किवाड़ों के बाहर आप इन्दू को गोद में लिए आँखों से आंसू बहाते हुए खड़े हैं। मैं आपको देखकर चिल्ला उठी—प्राणेश! मुझे बचाओ—किन्तु इसी समय उन राक्षसों ने मुझे उस धधकते अग्निकुंड में ढकेल दिया; और मैं जलने लगी।

"आह! स्वामिन्! यह कैसा भीषण स्वप्न है? मैं काश्मीर नहीं जाऊँगी।"

चंद्रकांत ने सजल नेत्रों से कहा:—"जब से तुमने ज़हर पिया है, बराबर तुम्हारी मानसिक बीमारी बढ़ती ही जा रही है। वह ज़हर नहीं पर ज़हर से भी अधिक भयंकर नशीला पदार्थ था। यदि तुम्हारी ठीक चिकित्सा नहीं होगी तो हाय! कहीं डाक्टर का कहा हुआ रोग तुम्हें न हो जाय! चंद्रिका! तुम काश्मीर जाना नहीं चाहती, तो पीहर ही चली जाओ, वहां तुम्हें शान्ति मिलेगी।"

चंद्रिकाः—" वह कौनसा रोग डाक्टर ने बताया है? मैं आपको छोड़कर स्वर्ग में भी जाना पसंद नहीं करूँगी।"

चंद्रकांत ने आंखों में आंसू भरकर कहाः—डॉक्टर कहता था, " तुम पागल हो जाओगी। तुम्हारा कमज़ोर हृदय अब तनिक भी दुःख सहने योग्य नहीं रहा है। कहना मानो और कुछ महीने माँ के पास जाकर बिताओ।"

चंद्रिका ने आंखों से अश्रुधारा बरसाते हुए कहाः—" नहीं, इस भीषण स्वप्न को देखकर मैं कांप उठी हूँ। न मालूम क्या होनेवाला है! मैं आखिर पगली ही न बनूँगी! मुझे विश्वास है मैं पागल होकर भी आपकी सेवा में कोई त्रुटि नहीं करूँगी। भावी विपत्ति मेरे कान में आकर न मालूम क्या कह रही है! स्वामिन्! आपके पैर पड़ती हूँ, मुझे आप अपने चरणों से अलग न कीजिए। यदि मौत आने वाली है तो वह पीहर में भी आकर ही रहेगी; फिर व्यर्थ, मैं क्यों आपके सेवा-सुख से वंचित रहूँ।

चंद्रकांतः—" मौत! इस निर्दय शब्द को न बोलो 'चंद्रिका'! अभी संसार में तुमने देखा ही क्या है! मुझ अभागे के सहवास में तुमने अनंत दुःख सहे हैं। क्या सुख के दिन फिर नहीं आवेंगे?"

चंद्रिकाः—"हां, आपको सुखी देखने के लिए मैं भी तो अनंत काल तक जीवित रहना चाहती हूं।" इसी

समय चन्द्रिका को फिर स्वप्न की घटना याद हो आई और वह भयभीत होकर चन्द्रकांत बाबू की छाती से लिपट गई।

२०

दिन ढल चुका था—" चन्द्रिका " पानी पीने के लिये नीचे की मंज़िल में आई—और लम्बा घूँघट निकाल कर रसोई घर में प्रविष्ट हुई। पानी पीकर देखा, तो चूल्हा जल रहा था, पर सास वहां नहीं थी; दरवाजे के किंवाड़ चौपट थे। कुत्ता बिल्ली आकर कहीं चौका न उतार दे—इसलिये

चन्द्रिका दरवाजे के किंवाड़ लगाने के लिये किंवाड़ के पास गई। सास नहीं थी, इस लिये चन्द्रिका ने घूँघट हटा दिया था। वह किंवाड़ लगा रही थी इसी समय किसी की सीढ़ियां चढ़ने की आवाज़ सुनाई दी। चन्द्रिका पुनः घूँघट निकालने ही वाली थी कि उसने देखा—सामने रजनीकांत खड़े हैं।

चन्द्रिका ने घूँघट नहीं निकाला, रजनीकांत ने भावज के चरणों में मस्तक झुका दिया। चन्द्रिका बहुत दिनों बाद रजनीबाबू को देखकर, आँखों से प्रेमाश्रु बहाती हुई, उन्हें अपने चरणों से उठाकर करुण आवाज में बोली "भैय्या साहब! हम लोगों से आप इतने क्यों रूठ गये हैं, कि कभी दर्शन भी नहीं देते? अपनी दुःखिया भावज की कभी तो सुध ले लिया करो।"

इसी समय रजनीकांत ने जेब से चन्द्रहार निकाला और बोले:—"आप मुसीबत में हैं यह मुझे आजही मालूम हुआ। इस चन्द्रहार को बेचने की कोई ज़रूरत नहीं है। लीजिये, ये दो सौ रुपये आपके हाथ खर्च के लिए मैं देता हूं। जब आपके पास आवें लौटा देना।"

रजनीकांत दो सौ के दो नोट और वह चन्द्रहार देकर, चन्द्रिका के अत्यन्त उद्विग्न मुखड़े की तरफ देखने लगे।

चन्द्रिका, "चन्द्रहार" को देख कर चौंक पड़ी। उसने अत्यन्त धीरे से पूछा:—"यह हार किसने आपको

दिया है ? मैंने तो इसे नहीं भेजा ! यह हार तो कई महिने पहले चोरी हो गया था !"

रजनीकांत के आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। वे जाते हुए अत्यन्त धीमे स्वर से बोले:—"अभी-अभी एक लड़का मुझे दे गया है; वह 'काशी' बुढ़िया का नाती है।"

चन्द्रिका विह्वल होकर रो पड़ी—उसने वह हार जल्दी से आंचल में छुपा लिया। फिर भयभीत होकर बोली:—"हाय ! यह कोई षडयंत्र मालूम होता है ! आप शीघ्रही यहां से चले जाइये। सासूजी बाहर गई हैं—यदि कहीं इस तरह चुपचाप आपसे बातें करते मुझे देख लेंगी—तो मेरी बड़ी दुर्गति होगी।

"हाय! अब क्या होगा ? इस हार की घटना पर स्वामी कैसे विश्वास करेंगे ? यह हत्यारी काशी क्या मेरे खूनही की प्यासी है ?" चंद्रिका ये सब वाक्य पगली की तरह ज़ोर से बोल गई—वह आंसू बहाती हुई ऊपर के कमरे की सीढ़ियां चढ़ने लगी।

इसी समय—"स्नानागार" के फाटक खुल पड़े। चंद्रिका ठिठक कर खड़ी हो गई। एक साथही 'काशी' और सास को वेग से अपनी तरफ झपटते देखकर चन्द्रिका पत्थर की प्रतिमा की तरह खड़ी रह गई। वह अपना घूँघट भी निकालना भूल गई।

सास रसोई घर में घुसकर एक जलती हुई लकड़ी उठा लाई।

"दुराचारिणी ! कुलटा !! हरामज़ादी !!! ले, चख अपने यार से मोहब्बत करने का मज़ा ! " कहती हुई सिंहनी की तरह वह निष्ठुर सास उस भोली हिरनी पर झपट पड़ी। उसने उस जलती हुई लकड़ी से पशु की तरह चन्द्रिका को सूड़ दी। चन्द्रिका की कोमल कलाइयाँ जल गईं; शरीर पर जगह जगह घाव होगये। आँगन में हृदय-विदारक रुदन और उस दुखिया के जले हुए चमड़े की दुर्गन्ध से पिशाचकाण्ड मच गया।

"हा स्वामी ! प्राणेश ! मुझे बचाओ," कहती हुई चंद्रिका आंगन में लोट गई, पर उस ज़ालिम सास को तरस नहीं आया। उसने बल पूर्वक उस छटपटाती अबला पर एक हाथ और जमा दिया। इस बार चंद्रिका बड़े ज़ोर से चीख उठी। उस भीषण चोटने उस कोमल पुष्पलता की दहिनी पसली तोड़ दी; फिर भी उस वज्र-हृदया का हृदय नहीं पसीजा; और वह गर्जकर बोली:— "इस कुलटा की कितनी मज़बूत हड्डियां हैं...इतनी भयंकर मार को सहकर भी अभी ज़िंदी ही है।

इसी समय सास ने, मोत की मेहमान उस दुखिया को, उसके उन काले, चमकीले, पर आंगन की धूल से सने हुए, बालों को पकड़ कर बल पूर्वक एक खंबे के सहारे खड़ी कर दी; और रस्सी से जकड़ दी। दावानल में झुलसी हुई पुष्पलता की तरह चंद्रिका एक तरफ़ गर्दन लटका कर मृत्यु की अन्तिम घड़ियाँ गिनने लगी।

इसी समय 'काशी' एक विकट अट्टहास करती हुई बोली, "यह काशी के दांत तोड़ने का प्रतिशोध है।" 'काशी' शीघ्रता से नीचे उतर गई। चंद्रिका इस अट्टाहास को देखकर विह्वल हो उठी। "हा प्राणेश! आपकी चंद्रिका इस संसार से विदा हो रही है; उसे अन्तिम दर्शन देने के समय आप कहां हो?"

मकान के बाहर भी इस पिशाच-कांड की खबर पहुँच चुकी थी; बड़ी भीड़ बाहर जमा हो रही थी। इसी समय अपने मकान के सामने इतनी भीड़ को हीरा ने देखा। वह इन्दू को लिये हुए बाजार से घर आ रहा था। पागल की तरह भीड़ को चीरता हुवा "हीरा" मकान में घुस गया। ऊपर जाकर देखा उसकी प्यारी मालिकन आंखोंमें आंसू भरे जीवन की आखिरी सांसे ले रही है—सामने जलती लकड़ी लिये राक्षसी सास पिशाच रूप धारण किये खड़ी है! हीरा इन्दूसहित रोता हुवा उलटे पांव दौड़ पड़ा, वह नीचे आकर चिल्लाने लगा—"भाईयों! दौड़ो मेजिस्ट्रेट साहब को जितनी जल्दी हो सके भेजो मेरी मालिकन चंद मिनिटों की मेहमान है; मेरी टांगें तो कांप रही हैं। हीरा अधिक नहीं बोल सका। वह पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ा। 'इन्दू' भी फूट फूट कर रोने लगी। भीड़ से कई आदमी अदालत की तरफ़ दौड़ पड़े। कई एक स्त्रियां इस घटना को सुनकर आँखों से आंसू बहाये बिना नहीं रह सकी। 'चंद्रिका' मोहल्ले भर में सारी स्त्रियों की प्यारी थी।

अधिक देर नहीं लगी। चंद्रकांत बाबू—इस समाचार को सुनकर पागलों की तरह दौड़ पड़े उनके पीछे पीछे एक बड़ी भारी भीड़ भी, चपरासियों, कारकूनों एवं उनके मित्रों की दौड़ी आ रही थी। उनके कई डॉक्टर मित्र भी, खबर पाकर, कोई मोटर से, कोई सायकल से दौड़ पड़े।

चंद्रकांत ने मकान में घुसते ही देखा—इन्दू किसी पड़ोसी की गोद में रो रही थी; हीरा अबतक बेहोश पड़ा था; पर वे कहीं नहीं रुके, तेजी से मकान में घुस पड़े। साथ ही कई एक उनके डॉक्टर मित्र भी घुस पड़े।

चन्द्रिका की कमनीय ग्रीवा, मुरझाई हुई पुष्पलता की तरह झुकी हुई थी।

"हा चन्द्रिका! तेरी यह दशा" कहते हुए चन्द्रकांत ने दोनों हाथों से अपना सर पीट लिया। उनके मित्रों ने उन्हें सम्हाला। डाक्टरों ने तेजी से बन्धन काट कर चन्द्रिका की नाड़ी देखी;—सबके मुँह उतर गये। एक डाक्टर जो चन्द्रकांत बाबू का निकटस्थ मित्र था—आंखों में आंसू भरकर बोला:—"आखरी समय है जी भरकर देखलो, फिर इस पुष्पलता को न देख सकोगे मित्र!

चन्द्रकांत पागल हो उठे। उन्होंने चंन्द्रिका को अपनी गोद में उठालिया। "कहां जाती हो प्रिये? इस अभागे चन्द्रकांत को तुम्हारे स्वप्न के ऊसर जंगल में छोड़ कर—अकेली कहां जा रही हो! तुम तो कहती थीं—आपको सुखी करने के लिये अनंत काल तक जीवित रहूँगी—फिर यह विश्वासघात

कैसा प्रिये ! बोलो, बोलो, देखो यह तुम्हारी लाड़िली इन्दू रो रही है क्या इससे भी नहीं बोलोगी ?"

मित्र की व्यथा डाक्टर से नहीं देखी गई। एक खुराक 'मात्रा' चंद्रिका को पिलाई। चन्द्रिका ने चौंक कर आँखें खोल दी। फिर वह अत्यन्त धीमे स्वर में बोली:—"मेरे प्राणाधार ! मैं असमय में आपसे सदैव के लिये विदा हो रही हूँ, यह मेरा दुर्भाग्य है; किंतु दिल की बातें करने का यह अन्तिम अवसर मिला, इससे मेरे हृदय का भार अब हलका होगया।"

वह चंद्रहार अब भी चंद्रिका के आंचल में छिपा था; उसे बता कर चंद्रिका ने सारी घटना कह सुनाई।

इसी समय सास बोल उठी "यह सब झूट कहती है" चंद्रकांत मां की कठोरता पर बेहताश रो पड़े। वे दोनों हाथ जोड़कर बोले:—"रहम करो मातेश्वरी ! इस दुखिया की अंतिम बातें तो मुझे सुन लेने दो ! आज इसकी आखिरी विदाई है, फिर तुम भी इसे नहीं देख सकोगी, आनन्द से अनन्त काल तक जीवित रहना !"

मां रसोई घर में चली गई—इसी समय चंद्रिका ने आखों में आंसू भर कर कहा:—"सच्चे हृदय से कहो प्रियतम ! मेरे कथन पर आपको विश्वास हुआ या नहीं ? मैं कुलटा नहीं हूँ। स्वामी मैंने आपके चरणों की रजसे भी कभी विश्वासघात नहीं किया है।"

मेरे हृदय-मन्दिर की देवी ! मेरे रोम रोम में 'चंद्रिका'

बसी है—उसकी सेवा बसी है—उसकी देवात्मा बसी है। छिः तुम्हें कुलटा कहने वाले मनुष्य का मैं जन्म भर मुँह नहीं देखूँगा, इससे अधिक विश्वास क्या चाहती हो प्रिये!"

एक हलकी सी मुस्कुराहट के साथ चंद्रिका ने कहाः—"मैं अब प्रसन्न हूँ। मेरी इन्दू कहां है? लाओ उसे मैं अपने हाथों से चंद्रहार पहनाऊँगी।" कम्पित हाथों से उसने चन्द्रहार उठा कर रोती हुई इन्दू को पहना दिया; फिर उसके गालों को चूमकर सजल नेत्रों से कहाः—"रोती काहे को है बेटी! तेरे बाबू साहब तुझे आनंद से रखेंगे।"

इसी समय चन्द्रिका की आवाज़ कमजोर होगई; पुतलियाँ फिर गईं; वह दोनों बाँह पसार कर स्वामी की छाती से चिमट गई।

"प्राणेश! बिदा! मेरी इन्दू को सुखी रखना। हा भगवन!" कहते हुए उस कुसुमलता का जीवन-प्रकाश लुप्त हो गया।

'हाय चंद्रकांत! अब तुम किसलिये जीवित रहोगे' कहते हुए—गश खाकर चंद्रकांतबाबू ज़मीन पर गिर पड़े। अपनी प्रियतमा का मस्तक अब भी उनकी गोद में था।

हीरा रो पड़ा; डाक्टर भी खूब जी भर कर रोये। इंदू मां के शव पर मस्तक टेककर फूट फूट कर रो रही थी;

अड़ोसी पड़ोसी सब कोई सौंदर्य्य-प्रदीपिका साध्वी चन्द्रिका की अंतिम विदाई में आँसू ढाल रहे थे—पर एक पाषाण हृदय की आँखों में अब भी आंसू नहीं थे !

२१

आंगन में भयानकता का साम्राज्य छा रहा था इसी समय किसी ने विकट अट्टहास करते हुए कहा:—"इन आँखों में फिर आँसू क्यों, क्या मौत से डरती हो रजनी ?"

'नहीं दीदी' कहती हुई, रजनी स्वप्न से चौंककर बैठ गई। फिर चारों तरफ देखने लगी, पर 'दीदी'

कहीं दिखाई नहीं दी।

दिखाई दिया—वही रक्तरंजित आँगन-मेहमूद का मोती की माला तोड़ देना-स्वामी का कोड़ा उठाकर टूट पड़ना और फिर डूब मरने की आज्ञा देना।

रजनी पगली की तरह चिल्ला उठी-" मौत ! मौत !! तू कहां है ? बहन ! आ—मैं तुझसे नहीं डरूंगी; स्वामी की आज्ञा है, मैं तुझसे प्यार करूंगी।

" आँखों ! अब रोना बंद करो-किसके लिये रोती हो पगली कहीं की ! संसार में तुम्हें प्यार करनेवाला कौन है ?"

" आज इस मकान से आखिरी विदा लेना है। फिर इसे नहीं देख सकूंगी। मेरे रहते तक इस घर में अब स्वामी नहीं पधारेंगे। मेरी सेवायें उन्हें सुखकर नहीं हैं। उन्हें सुखी करने के लिये मुझे घर छोड़ना पड़े तो यह मेरे सौभाग्यकी बात होगी।"

" आज सबसे जी भर कर मिलूँगी। मकान की झाड़ू से लगाकर गले के चंद्रहार तक से मिलूँगी। स्वामी की सुचारु सेवाओं को अनंत काल तक करते रहने के लिये घर की प्रत्येक वस्तु को आदेश करूंगी। क्या हुवा, स्वामी ने मुझे कुलटा समझा; पर मैं सौभाग्यवती हूं। सौभाग्यवती की तरह मस्तक पर कुंकुम की बिंदी और माँग में सिंदूर भर कर सारे क़ीमती वस्त्राभूषणों को पहन कर एक बार आराध्यदेवकी स्तुति करूंगी; उनसे अपने अपराधों के लिए

अंतिम क्षमा याचना करूंगी; तब मेरी इस घर से विदाई होगी।"

सब दुःखों को भूलकर रजनी विदाई की तयारी में जुट गई। प्रथम झाड़ू उठाकर सारा मकान बुहार दिया; फिर उसे नियमित स्थान पर रखती हुई हाथ जोड़ कर कहने लगी:—"सखी! मैं तुम्हारी सेवाओं की अत्यंत ऋणी हूं। घर में कई बार ऊपर नीचे फेंककर एवं शुद्ध अशुद्ध कचरा बुहार कर तुम्हें वर्षों से कष्ट पहुँचाती आई हूं; आज इस घर से मैं अनंत काल के लिये विदाई लूँगी। अतएव मैं तुमसे क्षमा याचना करने आई हूँ।"

रजनी ने झाड़ू के सामने अपना मस्तक नवा दिया और अत्यंत करुण स्वर से बोली:—"प्रिये! क्षमा करो! साथ ही मैं प्रार्थना करती हूं, इस घर की भावी नई मालिकन एवं मेरे स्वामी को मेरी अनुपस्थिति में किसी तरह का कष्ट न पहुँचाना।"

इस तरह झाड़ू के बाद, दीपक, अग्नि, शय्या, चाकू, सरोता आदि घर की प्रत्येक जरूरी वस्तु से रजनी ने क्षमा मांगी और स्वामी की भावी सेवाओं के लिये आदेश दिया।

फिर स्नान किया; पुष्पलताओं को पानी पिलाया; 'कामिनी' को भी नहलाया; क़ीमती वस्त्र पहने, आभूषण पहने और फिर पुष्प चुनने लगी।

समय सूर्यास्त का था—आखिरी किरणें जूही की पुष्प लतिका पर बिखर रही थी! रजनी हमेशा जूही के फूलों

की माला संध्या में स्वामी के लिये गूंथती थी। आज भी फूल चुनते समय स्वामी का स्मरण हो आया, 'पर, स्वामी कहां? किसके लिये फूल चुनती है पगली!' उन्हीं के लिये। वे हँसते हुए हमेशा की तरह मेरी पुष्पमाला पहनने क्या आज नहीं आवेंगे?

हां, नहीं आवेंगे; जब तक रजनी घर में रहेगी वे नहीं आवेंगे।

रजनी का हृदय भर आया; आँखों से आँसू छलक पड़े। जूही की पुष्प लतिका को दोनों हाथों से अपने बाहुपाश में गूँथ कर रजनी पगली की तरह आँसू ढालती हुई बोली:—"जूही! जूही!! स्वामी मुझ से रूठ गये हैं; पर तुझे तो वे अब भी प्यार करते हैं। तू उनके कंठ में विराजती है; तू भाग्यशालिनी है। मैं निर्दोष हूँ—इसे क्या तू नहीं जानती बहन? आज मैं अन्तिम विदा लेने आई हूँ। क्या मेरे लिये तू स्वामी को समझा सकेगी, कि मैं निर्दोष थी।"

सहसा हलके—से धक्के से जूही के सारे फूल झड़ पड़े। रजनी ने उन झड़ते हुए फूलों को—जूही की अगणित आँखों से बरसते हुए अनन्त अश्रु बिन्दुओं के रूप में देखा।

"क्यों, क्यों, रोती क्यों हो बहिन! मेरे वियोग में तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा। इस घर की नई स्वामिनी, तुम्हें सींचा करेगी। मेरे स्वामी के लिये उतनेही फूल देना जूही! जितने इस समय देती हो।"

फिर पासही दूसरे गमले में लगी हुई चमेली की बेल

को सम्बेधन करके कहने लगी:—"प्रिय चमेली! तू भी फूलती फलती रहना; कभी मेरे स्वामी से द्वेष न करना! अपनी नई मालिकन को अप्रसन्न न करना!"

झोली में फूल चुन कर आँखें मूँद कर 'रजनी' उन पुष्प लतिकाओं से विदा हुई। फिर दीपक जलाकर उसने पुष्प-शय्या सजाई—स्वामी की तसवीर उतार कर उसे शैय्या पर पुष्पों से सजाई, फिर मस्तक नवा कर स्वामी को अंतिम प्रणाम किया।

अब रजनी अपना 'चार्ज' स्वामी को सम्हलाने लगी। कमरे के द्वार पर लिखा हुआ था—"रजनी का आनन्द भवन—बिना इजाजत प्रवेश करने का अधिकार सिर्फ प्राणनाथ को है।"

उसने चाकमट्टी से इस लाइन को मिटादी और उसके स्थान पर लिख दिया—"स्वामी का विलास-भवन, प्रवेश करने का अधिकार स्वामी की नई प्रियतमा को है।"

इस लाइन को लिख कर वह पढ़ नहीं सकी। आँसुओं से आँखें रुँध गई थीं। फिर उसने उन क़ीमती वस्त्रों को उतार दिये; उन आभूषणों को भी खोल दिये। एक पेटी में बन्द करके उसे भी कमरे में रख दी और उस पर एक काग़ज़ का टुकड़ा चिपका कर लिख दिया—"ये वस्त्राभूषण मैं अपनी हार्दिक इच्छा से स्वामी की नवपत्नी को समर्पित करती हूँ।"

—"रजनी"

रजनी कमरे के बाहर हो गई। 'कामिनीकांत' बाहर झूले में लेटा हुआ मुस्करा रहा था। रजनी ने आज उसे क़ीमती से क़ीमती वस्त्र पहनाये थे; कंघी से बाल सँवारे थे। आज उसे ज्वर नहीं चढ़ा था। इसीलिए उस बालक की निर्मल आंखें पिछली रात्रि के शीतल चांदकी तरह मन्द मन्द विहँस रही थीं।

रजनी ने कामिनी को गोद में उठा लिया, फिर उसके गालों पर हलका सा चुम्बन लेते हुए कहने लगी:—"आज मेरी गोद में हँसते हो; हां, खूब जी भर कर हँसो, फिर यह हँसी मेरे लाड़िले पुत्र! मैं कहां देखने आऊँगी? कल तो न मालूम किसकी गोद के मेहमान बनोगे! चम्मच से दूध पीना होगा—वह भी जबरन। तुम्हारे रोने और हँसने का वह मूल्य नहीं रहेगा! अधिक रोने पर झूले में या आंगन में डाल दिये जावोगे। इसलिए कहती हूँ—पराये घर में किसी तरह की ज़िद नहीं करना, जो मिले खा पी कर सन्तोष कर लेना।"

अब रजनी का हृदय भर आया; आँखों से चौसर अश्रुधारायें बह चलीं। कामिनी भी मां को रोते देखकर रोने लगा।

रोते क्यों हो मेरे लाल! मैं बड़ी दीदी को एक पत्र लिखे देती हूँ; वह मालूम होतेही तुम्हें अपने घर लिवा ले जायँगी। वह मुझसे भी अधिक तुम्हें प्यार करेंगी। इन्दू के साथ खेलना और सुख से रहना।

वह अबोध बालक, माँ की मार्मिक वेदना नहीं समझ सका। माँ की छाती से चिपट कर वह सिसकियां भर रहा था।

आँसू पोंछ कर "रजनी" कुर्सी पर बैठ गई और टेबल पर रखे हुए दीपक के सामने पत्र लिखने लगी "दीदी चंद्रिका"!

सबसे जी भर कर मिल चुकी हूँ—घर के पत्ते पत्ते से मिली हूँ। तुमसे भी मिलने की इच्छा थी, पर दुर्दैव ने मेरी इच्छा पूर्ण करना उचित नहीं समझा। स्वामी की अन्तिम सुखदायी आज्ञा प्राप्त कर मैं अमर सुखी होने विदा होती हूँ। विदा के पूर्व दिल की एक दो बातें तुम्हें कहती हूँ। दिल की बात और किसे कहूँ?

स्वामी मुझसे घोर असन्तुष्ट हुए हैं। इस घर में मैं रहूँगी तब तक स्वामी नहीं पधारेंगे। फिर उनकी आज्ञा हुई है—"कुलटा—यह अपनी चांडाल सूरत फिर कभी न दिखलाना"

"कुलटा"—इस शब्द को हृदयेश्वर के मुख से सुनकर मैं अत्यन्त दुःखी हुई हूँ। मरने के अन्तिम क्षण तक यह कलंक मेरे हृदय में खटकता रहेगा। स्वामी को दुःख पहुँचाकर इस तुच्छ जीवन को जीवित रखने की तनिक भी लालसा नहीं है।

शरीर का रोम रोम स्वामी के सुख की खातिर बलिदान होने को तैयार है। पर निर्लज्ज आंखें एक पराये खिलौने को देखकर आंसू ढाल रही हैं।

खिलौना पराया है, मैं उसकी स्वामिनी नहीं हो सकती। पर अपने हृदय के रक्त से उसका पालन-पोषण मैंने किया है, तभी तो वह मुझे इतना प्यारा है!

वह खिलौना मेरा 'कामिनी' चन्द मिनिटों में सदा के लिए मेरी आखों से ओझल हो जावेगा। मैं उसकी रक्षा का भार तुम्हें देती हूँ। क्या इसे स्वीकारोगी बहिन?

इसके सिवाय तुम्हें याद होगा दीदी! एक दिन चांदनी रात में मकान की छत पर 'इन्दू' ने 'कामिनी' के गले में चंद्र-हार पहनाया था। तब हम दोनों बहनों ने इनके भावी प्रणय की प्रतिज्ञा की थी। मेरा अंतिम अनुरोध है—'मेरे कामिनी से इन्दू का विवाह अवश्य करना।'

यह पत्र तुम्हें मिलते समय तक मैं संसार के अनंत दुःखों से मुक्त हो जाऊँगी। कामिनी को इन्दू की तरह लाड़-दुलार से रखना। बड़े भय्या से मेरा अंतिम प्रणाम कहना। मैं आप प्रियजनों से बिना मिले सदाके लिए बिदा होती हूँ। इस का दिलमें अथाह दुःख है। कामिनी को एक पड़ोसिन को सौंप कर जाती हूँ। स्वामी का कोई एतराज न हो तो पत्र पढ़ते ही उसे बुलवा लेना। छोटी बहन के अगणित अपराधों को आज सच्चे हृदय से अंतिम बार क्षमा कर दो दीदी! मेरी भावी बहूरानी "इन्दु" को प्यार करना।

अंतिम क्षमा प्रार्थिनी—

"रजनी"

पत्र लिखकर लिफाफे में बंद कर दिया; फिर दूसरा

पत्र स्वामी को लिखना शुरू किया।

प्राणेश्वर!

मैं नहीं समझती थी "मौत" मेरे इतनी समीप आ चुकी है! भय मौत का नहीं, पर अपनी भूल का है। जीवन के इस अल्पकाल में, आपको प्यार करने की हविस नहीं मिटा सकी। शर्म से एक भी बार आपकी अभिराम मुखमुद्रा, नयन भर नहीं देख सकी। सोचा था—'एक दिन सौभाग्य-सूर्य्य की सेवा में इस सुन्दर सलोने जीवन को सुख से विसर्जन कर दूँगी; परहा! दुर्दैव ने मेरे प्राणों का कुछभी मूल्य नहीं समझा। मैं "झलटा" होकर-हृदयेश्वरी के सिंहासन से च्युत होकर मरने जा रही हूँ।

वह मृत्यु भी कितनी सुखकर होती जब स्वामी के कंधे से इस घर से मेरी विदाई होती? कहां हो प्राणेश्वर! इस आखिरी समय में एक बार आपको जी भरकर देख तो लूँ। इतने निष्ठुर न बनो! इस घर में अब मैं नहीं लौटूँगी। केवल आपका अंतिम आशीर्वाद चाहती हूँ। बिना आपके आशीर्वाद के मुझे नर्क में भी स्थान नहीं मिलेगा। केवल पन्द्रह दिन के लिये जब मैं पहली बार पीहर गई थी; स्टेशन तक रुमाल से मुँह छिपाकर आप मुझे विदा देने गये थे। आज वही दासी अनंत काल के लिए ऐसे पीहर में जारही है—जहां से फिर न लौटेगी। ऐसे हृदय-विदारक समय में निर्मोही नाथ! आप कहां जा छिपे हो?

आपकी यह दासी 'कुलटा' नहीं है। उसने आपके चरणों की धूलि के साथ भी विश्वासघात नहीं किया है। दुराचारी 'मेहमूद' ने जाल बिछाकर स्वामिन्! आपको ठग लिया। और मुझ अभागिनी के अखण्ड सौभाग्य को डस लिया है। नाथ! विश्वास कीजिए! मैं निरपराधिनी हूँ। चार दिन से आपको भोजन कराये बिना मैंने अन्न का एक कण भी मुँह में नहीं लिया है। आपके लाड़ले 'कामिनी' ने भी केवल बाजारू दूध पीकर ये दिन बिताये हैं।

इस हरे भरे घर को छोड़ कर जाते हुए मेरा हृदय अथाह दुःख से चूर चूर हो रहा है। हा देव! तूने यह क्या किया! अच्छा हृदयेश्वर! दासी को अन्तिम बिदा दीजिये। मेरे अगणित अपराधों को क्षमा कीजिये। मेरे अबोध 'कामिनी' को अपनी नव प्रेयसी की सिखावट में आकर दुःखी न करना। ओ! निष्ठुर प्रियतम!! मैं नहीं समझी थी—जिसका हाथ पकड़ कर हृदयेश्वरी बना कर जीवन भर साथ में रखने का वादा पुरोहित के सन्मुख करके आप लाये थे, उसके साथ इस तरह मझधार में धोखा करोगे।

अनन्त दुःखिनी—

"रजनी"

पत्र लिख कर टेबल पर रख दिया। सिर्फ दीदी के बंद पत्र को साथ में लेकर 'कामिनी' सहित रजनी उठ खड़ी हुई। फिर मकान की एक एक सीढ़ी पर अगणित आंसुओं की बूंदें टपकाती हुई रजनी सीढ़ियां उतरने लगी।

मकान के बाहर आकर रजनी ने सांकल चढ़ा दी। फिर द्वार पर घुटने टेक कर रजनी ने मकान को तीन बार प्रणाम किया फिर जी भर कर एक बार रोई, द्वार की देहली आँसुओं से भीग गई!

फिर धीरज धर कर 'रजनी' ने आंसू पोंछ डाले और पड़ोसिन के घर गई। 'कामिनी' को पड़ोसिन की गोद में देते हुए रजनी ने कहा:—"बहन! मैं अपना इलाज करवाने बाहर गांव जा रही हूँ, मेरे हृदय में कोई बीमारी है। वहां आपरेशन होगा, शायद एक महिने में वापस लौटूँगी, तब तक तुम इस बच्चे को प्यार से रखना।"

दो सौ रुपये के दो नोट और वह बन्द पत्र पड़ोसिन को देती हुई रजनी फिर बोली:—"ये रुपये 'कामिनी' के ही हैं जो खर्च करना चाहो इसके लिये करना; और यह पत्र तू मेजिस्ट्रेट साहब के घर जाकर कल सुबह दे आना।

पड़ोसिन अवाक सी रह गई। आखिर बात क्या है वह कुछ नहीं समझ सकी। उसने आश्चर्य से पूछा:—"इस छोटे से बालक को छोड़ कर आप अकेली क्यों जाती हो? फिर इन दो सौ रुपयों को देने की क्या जरूरत है? क्या एक बच्चे का खर्च भी हमसे नहीं निभेगा?

रजनी ने करुण स्वर से कहा :—आपरेशन का मामला है शायद अधिक दिन लग जावें। फिर जो रुपये बचेंगे मैं वापिस ले लूँगी। तुम भी बच्चे की मां हो। इसी लिये मैंने तुम्हारा भरोसा किया है। इसे खूब आराम से रखना।"

इतना कहते कहते 'रजनी' का गला भर आया; आवाज़ रुक गई; आंखें डबडबा आईं ; आंसू छलक पड़े। कामिनी भी जो मां की तरफ टकटकी लगाये देख रहा था, रो पड़ा।

'रजनी' ने—एक बार—फिर 'कामिनी' को गोद में ले लिया; छाती से लगा कर आंखों से आंसू ढालती हुई बोली:—"रोते क्यों हो मेरे लाल! मैं शीघ्रही वापिस लौटूँगी। फिर यह बहन भी तो तुम्हें मेरी ही तरह लाड़ दुलार से रखेगी। अबोध कामिनी, माँ की आंखों में आंसू देख कर और भी जोर से रोने लगा। फिर माँ के आंचल में मुँह छिपा कर कुछ खोजने लगा।"

रजनी दो मिनट के लिये आंगन में बैठ गई। फिर चार दिन के भूखे प्यासे शुष्क पयोधरों से अपने प्यारे बालक की दुग्ध पान की अन्तिम इच्छा पूर्ण करने लगी।

दिल में रजनी ने कहा—'आज जी भर कर मां के हृदय का मीठा दूध पीलो कामिनी! फिर तुम कहां! और मैं कहां?'

पड़ोसिन को कहीं संदेह न हो जाय, इस भय से 'रजनी' शीघ्रता से खड़ी हो गई, और अविरल अश्रुधारा बहाते हुए कामिनी को पड़ोसिन की गोद में दे दिया। और अन्तिम बार 'कामिनी' के गालों को माँ ने चूम लिया। फिर पड़ोसिन की तरफ देखा तो वह भी रो रही थी। रजनी ने रुँधे हुए स्वर में पूछा:—"तुम क्यों रोती हो बहन?

अच्छा अब मैं जाती हूँ। कामिनी ! माँ को भूल न जाना लाल ! खूब सुख से रहना। "

रजनी शीघ्रता से घर से बाहर निकल गई। पड़ोसिन द्वार तक दौड़ कर कहने लगी:—" कहां जाती हो 'रजनी' बहन ! इस घोर अँधियारी रात्रि में तुम अकेली कहां जा रही हो ? " इसी समय कामिनी भी जोर से—मां—मां—कह कर चिल्ला उठा। कामिनी फिर चिल्लाया—"मां—मां"....... पर तब तक मां तो उस घोर अँधियारी रात्रि के अंधकार में विलीन हो चुकी थी।

'मां—मां'—इस प्यारे शब्द के साथ कामिनी के हृदय-विदारक रूदन को 'रजनी' के कान बहुत दूर तक सुनते रहे। पर वह वापस नहीं लौटी ! "अब 'कामिनी' मेरा नहीं है—संसार मेरा नहीं है—और यह शरीर भी मेरा नहीं है। अब किसे प्यार करूँ—किस पर विश्वास करूँ ? इस अन्तिम समय में—मेरा साथ देने वाली है तो—वह है 'मौत,' बस उसी साथिनी को प्यार करूँगी। "

रजनी शहर पार करके जंगल में घुस गई। वह आगे और आगे बढ़ती ही गई। उस घोर अँधियारी रात्रि में पूर्ण सन्नाटा था। रजनी एक भयानक बावड़ी के पास जाकर रुकी।

बावड़ी की चोखट पर चढ़कर रजनी ने भीतर झाँका, वह भय से कांप उठी। रजनी चोखट पर बैठ कर आँसू ढालने लगी। सिर का जूड़ा खुल चुका था; साड़ी झाड़ियों

में फँस कर फट चुकी थी; पांव की तलियों से खून चू रहा था।

इसी समय रजनी के कानों में सुनाई दिया—'माँ—माँ' फिर दिखाई दिये रजनीकांत।

रजनी पगली की तरह दोनों हाथ पसार कर कहने लगी:—"आह! प्राणेश्वर! इतने बेरहम न बनो! मेरा बच्चा गला फाड़ २ कर रो रहा है। एक बार उसी प्यार से मुझसे फिर बोलो नाथ! आह! आपकी जुदाई भी कैसी दुःखदाई है। केवल इतना ही कह दो—"रजनी घर चलो" मैं नहीं मरूँगी। आह! प्रियतम! मुझे जुदा न करो—मैं मरना नहीं चाहती—कैसी भयावनी यह बावड़ी है, इसमें डूबकर मैं किस तरह मरूँगी! मैं सच्चे दिलसे कहती हूँ मैं कुलटा नहीं हूँ!"

क्षण भर में प्राणनाथ की सूरत ग़ायब होगई। कामिनी का रुदन भी बन्द होगया। उफ़, कायर रजनी! तेरे स्वामी तेरी परीक्षा लेने आये थे—तुझे मनाने नहीं। तू इस अन्तिम समय में भी अपनी परीक्षा में पास नहीं हो सकी। तुझे कायर समझकर वे चले गये हैं।

रजनीने क्षणभर में आँखें पोछलीं:—चौखट से नीचे उतर कर बड़े बड़े पत्थरों के टुकड़े साड़ी में भर कर कमर से बांध लिये। फिर बावड़ी की चौखट पर खड़ी होकर उसके भीतर घोर अन्धकार में झांकने लगी।

दिल में ख़याल आया—टेबल पर रखा हुआ पत्र पढ़कर प्राणनाथ अवश्य मेरी तलाश करने घर से निकले होंगे।

इसी समय सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट हुई। रजनी ने चौंक कर देखा "क्या वे आये हैं?"

पर यह क्या! दो राहगीर! "अरे भागो—भागो इस बावड़ी पर "चुड़ैल खड़ी है" कहते हुए जान लेकर भागे।

रजनी भय और दुःख से फूटफूट कर रोने लगी। "आह! स्वामिन् मुझे कुलटा समझते हैं। संसार मुझे "चुड़ैल" समझ कर भयभीत होता है। इस जीवन को अब एक क्षण-भर भी जीवित रखने की ज़रूरत नहीं है।"

रजनी हिम्मत करके बावड़ी में कूदने लगी; पर उस भयानकता को देखकर वह सिहर उठी। एक बार फिर करुण रुदन से रजनी ने उस निस्तब्ध जंगल को गुञ्जा दिया। पर किसी ने उस दुःखिनी को धीरज नहीं बँधाया।

आँखें बंद करली—"हा प्राणेश! हा कामिनी! तुम सुखी रहना।"

एक धड़ाम सी आवाज़ के साथ वह हिन्दू समाज का अधखिला गुलाब 'हिन्दू मारशल्-लॉ' की वेदी पर बलिदान होगया।

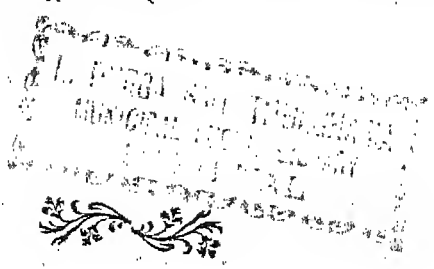

में फँस कर फट चुकी थी; पांव की तलियों से खून चू रहा था।

इसी समय रजनी के कानों में सुनाई दिया—'माँ—माँ' फिर दिखाई दिये रजनीकांत।

रजनी पगली की तरह दोनों हाथ पसार कर कहने लगी:—"आह! प्राणेश्वर! इतने बेरहम न बनो! मेरा बच्चा गला फाड़ २ कर रो रहा है। एक बार उसी प्यार से मुझसे फिर बोलो नाथ! आह! आपकी जुदाई भी कैसी दुःखदाई है। केवल इतना ही कह दो—"रजनी घर चलो" मैं नहीं मरूँगी। आह! प्रियतम! मुझे जुदा न करो—मैं मरना नहीं चाहती—कैसी भयावनी यह बावड़ी है, इसमें डूबकर मैं किस तरह मरूँगी! मैं सच्चे दिलसे कहती हूँ मैं कुलटा नहीं हूँ!"

क्षण भर में प्राणनाथ की सूरत गायब होगई। कामिनी का रुदन भी बन्द होगया। उफ़, कायर रजनी! तेरे स्वामी तेरी परीक्षा लेने आये थे—तुझे मनाने नहीं। तू इस अन्तिम समय में भी अपनी परीक्षा में पास नहीं हो सकी। तुझे कायर समझकर वे चले गये हैं।

रजनीने क्षणभर में आँखें पोछलीं:—चौखट से नीचे उतर कर बड़े बड़े पत्थरों के टुकड़े साड़ी में भर कर कमर से बांध लिये। फिर बावड़ी की चौखट पर खड़ी होकर उसके भीतर घोर अन्धकार में झांकने लगी।

दिल में खयाल आया—टेबल पर रखा हुआ पत्र पढ़कर प्राणनाथ अवश्य मेरी तलाश करने घर से निकले होंगे।

इसी समय सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट हुई। रजनी ने चौंक कर देखा "क्या वे आये हैं?"

पर यह क्या! दो राहगीर! "अरे भागो—भागो इस बावड़ी पर "चुड़ैल खड़ी है" कहते हुए जान लेकर भागे।

रजनी भय और दुःख से फूटफूट कर रोने लगी। "आह! स्वामिन् मुझे कुलटा समझते हैं। संसार मुझे "चुड़ैल" समझ कर भयभीत होता है। इस जीवन को अब एक क्षण-भर भी जीवित रखने की ज़रूरत नहीं है।"

रजनी हिम्मत करके बावड़ी में कूदने लगी; पर उस भयानकता को देखकर वह सिहर उठी। एक बार फिर करुण रुदन से रजनी ने उस निस्तब्ध जंगल को गुञ्जा दिया। पर किसी ने उस दुःखिनी को धीरज नहीं बँधाया।

आँखें बंद करली—"हा प्राणेश! हा कामिनी! तुम सुखी रहना।"

एक धड़ाम सी आवाज़ के साथ वह हिन्दू समाज का अधखिला गुलाब 'हिन्दू मारशल्-लॉ' की वेदी पर बलिदान होगया।

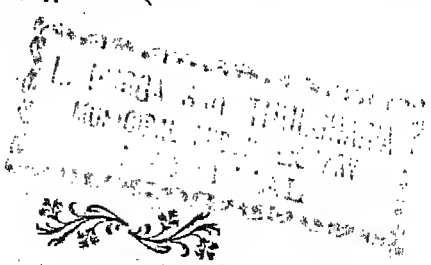

२२

विशाल कालरात्रि प्रियतमा के शव पर आँसू ढालते बीती; फिर प्रभात हुआ। पूर्वदिशा में वही लाली छाई; चिड़ियों ने वही चह चहाहट मचाई पक्षियों ने वही कलरव शुरू किया।

वही चंद्रकांत थे, वही आँखें थीं, वही प्रभात था; किन्तु पूर्व दिशा को अनुरंजित करने वाली, कमल-दल-विकासिनी

अरुणोदय की वह लालिमा उन्हें प्रज्वलित दावाग्नि के सदृश दिखाई दी। चिड़ियों और पक्षियों का कलरव उस अग्निकांड में झुलसकर मरते हुए असंख्य पशु पक्षियों के करुण चित्कारयुक्त हाहाकार सा सुनाई दिया।

चंद्रकांत उस खुली छत पर ध्यानमग्न होकर आकाश की तरफ़ देखने लगे। सोचा था, यहाँ शांति मिलेगी, पर यहां भी वही ताण्डव नृत्य दिखाई दिया।

उफ़, कैसा भयानक आकाश है—कैसा भीषण दावानल है! मेरी हृदयेश्वरी के प्राण लेनेवाली यही तो राक्षसी है!

"ठहर—ठहर मैं तुझसे बदला लूँगा"—कहते हुए चद्रकांत पागल की तरह पूर्व की लालिमा की तरफ़ दौड़ पड़े।

पर वे आगे दिवाल से टकराकर गिर पड़े। फिर पड़े पड़े ही सोचने लगे, "नहीं, वह अभी जीवित है—कल प्रातःकाल उसने इसी समय मुझे ऊपापान कराया था, फिर इन्दू को गोद में लेकर वह हँसती हुई मुझसे पूछने आई थी 'क्या कलेवा लाऊं?' फिर क्या इतने कम समय में वह प्रभात का सितारा अस्त होगया? नहीं यह मेरा स्वप्न है—वह जीवित है—अवश्य जीवित है।

"चंद्रिका! चंद्रिका!! तुम कहां हो? क्या, आज सदा की भांति प्रियतम का मुख सर्व प्रथम नहीं देखोगी?"

इसी समय प्रत्युत्तर में सुनाई दिया—"प्रियतम! आज आप इतने उदास क्यों हो? आपका दुःख मुझसे नहीं देखा जाता।"

चंद्रकांत पागल की तरह शयनगृह में दौड़ पड़े। "प्रिये! हृदयेश्वरी! चंद्रकांत के दुःख सुख की संगिनी! तुम कहाँ से बोल रही हो?"

चंद्रकांत ने वेग से कमरे के फाटक खोल डाले; फिर खिड़कियाँ खोलदीं। कमरे का कोना कोना ढूँढ़ लिया; पर वह प्यारी बोली फिर नहीं सुनाई दी।

चंद्रकांत निराश होकर सामने देखने लगे। चारपाई पर श्वेत चादर से ढकी हुई स्वच्छ शय्या बिछी हुई थी। सामने टेबल पर एक मुरझाया हुआ फूलों का गुलदस्ता रखा था। खूंटी पर "चंद्रिका" की एक बनारसी रेशम की फिरोज़ी साड़ी टँगी हुई थी—जिसे वह बड़े चाव से शयन के पूर्व पहनती थी। चंद्रकांत एक एक चीज़ को गौर से देखने और बटोरने लगे। इसी समय नीचे की मंज़िल से रोने की आवाज़ सुनाई दी और वह क्रमशः बढ़ने लगी।

"हां, अब विश्वास होगया; वह-वह मेरे जीवन की अमूल्य मणि सचमुच मुझे छोड़कर चलदी।"

आगे एक ताक में चंद्रिका के शृंगार की कुछ स्मृतियाँ रखी थीं। चंद्रकांत वहाँ ठहर कर प्रत्येक वस्तु देखने लगे। उसमें दो हीरे की जड़ाऊ हेयर-पिन्स थीं। जिन्हें चन्द्रकांत बाबू ने अमेरिका से मंगाई थीं। चंद्रिका इन पिनों को बहुत सुरक्षित रखती थी। वह इन्हें बालों में लगाकर फूली नहीं समाती थी। पचासों बार चंद्रकांतबाबू को अपने बालों में खोंसकर बताती और कहती, ये पिनें मुझे बहुत प्यारी लगती

हैं, ऐसा जवाहरात किसी राजा के घर में भी नहीं निकलेगा। एक बार इन्दू ने वह पिन उठाकर फेंक दी थी, तिसपर चंद्रिका उसे पीटने लगी थी। तब चंद्रकांत बाबू ने इन्दू को पिटने से बचाया था। इस घटना को याद करके चंद्रकांत अपने आँसुओं को नहीं रोक सके।

"हा प्राणप्रिये! इस असमय में मुझे छोड़कर—अपनी प्यारी इन्दू को छोड़कर—तुम किस देश में जा बसी हो मेरी रानी?" चंद्रकांत ने पिन जेब में रखलीं। इसी समय नीचे से रुदन-मिश्रित आवाज़ के साथ "इन्दू" का भी रोना सुनाई दिया। चंद्रकांत वेग से नीचे उतर आये।

नीचे आकर जिस दृश्य को देखा उससे चन्द्रकांत के दुःखी हृदय पर वज्र-सा प्रहार हुआ।

'इन्दू' पछाड़ खाकर रो रही थी। चन्द्रकांत बाबू की माँ उसे जबरन खींच कर 'हीरा को दे रही थी और कह रही थी "इसे पड़ोसी के घर रख आ; मानती ही नहीं; मुर्दे को छूने के लिये मचल रही है।"

हीरा बुरी तरह रो रहा था। इन्दू—'माँ! माँ! मेरी माँ' कहती हुई हीरा के कन्धे पर पछाड़ खा खाकर रो रही थी।

चन्द्रकांत का गला भर आया। वे रुँधे हुए स्वर से बोले:—"ठहर हीरा! इस अन्तिम समय में इस अबोध बालिका को अपनी माँ के आंचल से विलग न कर।"

पर उस कोलाहल में हीरा ने नहीं सुना; वह उस रोती बिलखती बालिका को ज़बरन लेकर सीढ़ियां उतर गया।

बिदाई की तैयारियां हो रही थीं। स्नान के बाद शव को नये वस्त्र पहनाने का समय आया; सास मामूली कपड़े निकाल लाई।

इसी समय चन्द्रकांत नीचे उतर आये; मां के हाथ से उन कपड़ों को छीन कर फेंक दिये। फिर आंसू पोंछ कर बोले:—"आज इसकी अन्तिम बिदाई है; तुम्हारे घर में यह अब नहीं आवेगी। इसके उन क़ीमती वस्त्रों को, जिन्हें वह जीवन में प्यार करती थी, रख कर हम क्या करेंगे?"

चन्द्रकान्त 'चन्द्रिका' के बाक्स की तरफ़ चल दिये। बाक्स खुला पड़ा था। खुले बाक्स को देख कर चन्द्रकान्त का चौसर आंसू बहाने लगे। उन्हें वह बात याद हो आई जब एक दिन बिना पूछे एक चित्र को देखने के लिये चन्द्रकान्त ने चुपके से चन्द्रिका की ताली छिपा कर बाक्स खोला था; तब वह कितनी बिगड़ी थी। मुँह फुलाकर—आप ने हमारी पेटी क्यों खोली; हम आप से नहीं बोलेंगे; जुरमाना दीजिये; पांच रुपये से कम नहीं लूँगी—आदि कई एक गुस्सेदार मीठी बातें सुनाई थीं।

आज वही बाक्स खुला पड़ा है। कोई भी उसे खोल कर देख सकता है।

"कहां हो? चंद्रिका! देखो, आज मैं तुम्हारे सारे बहुमूल्य वस्त्रों को नोच रहा हूँ। क्या आज उसी तरह मुँह फुला कर मुझसे नहीं झगड़ोगी? क्या आज मुझ पर बहुत बड़ा जुरमाना नहीं करोगी?"

अविराम आंसू बहाते हुए—चंद्रकांत ने सबसे क़ीमती पोशाक प्रियतमा के लिए निकाललो। फिर बाकी वस्त्रों को देख कर चंद्रकांत सोचने लगे—इन्हें बटोर कर अब किसके लिये रखूं? इन्हें दान कर दूं—प्यारी की स्मृति को संसार से उठा दूँ।

वही क़ीमती पोशाक पहनाई गई। चंद्रकांत ने आज अपने हाथ से मृतप्रिया के बाल सँवारे; फिर जेब से उन हीरे की पिनों को निकाल कर बालों में खोंस दी।

फिर विह्वल होकर चंद्रकांत ने उस मुखड़े को अन्तिम बार बाहुपाश में गूँथ लिया। फिर तीव्र स्वर से कहने लगे:—"मेरी हृदयेश्वरी! जिस हत्यारे हिन्दूसमाज के फ़ौजी क़ानून ने तेरे निरपराध रक्त से अपनी प्यास बुझाई है उस ज़ुल्मी समाज से मैं आज से सम्बन्ध विच्छेद करता हूँ। यह घर तेरे बिना श्मशान से भी अधिक भयावना हो चुका है; मैं यहां नहीं रहूँगा।"

इसके बाद—चंद्रकांत बाबू ने 'चंद्रिका' के सारे वस्त्राभूषण ग़रीबों को लुटा दिये। एक गगनभेदी करुण चित्कार के साथ चंद्रिका की इस घर से अन्तिम विदाई हुई। सारे मोहल्ले भर की आंखों में आंसू थे।

चिता तैयार हो गई। अग्नि-संस्कार के लिये चंद्रकांत को कहा गया। वे रथी के समीप जाकर खड़े हो गये।

"आह! कैसा भयावना अभिनय हो रहा है! इस रथी में मेरे हृदय-मन्दिर की ज्योत्स्ना विराज रही है—

जिसे मैंने प्राणों से अधिक प्यार किया—फूलों से अधिक सुकुमार समझा—उस कोमल रूपलता को इन भीमकाय लकड़ों की रथी में चुन देना यह कैसा न्याय है !

" आह ! उसे चोट पहुंचती होगी; उसकी सुकुमार कलाइयां छिल गई होंगी, उसके कोमल कपोल-कमल नुच गये होंगे !

" चंद्रिका—चंद्रिका !! अपने चंद्रकांत को भूल कर इस रथी में विराजना तुम्हें क्यों कर भाया है मेरी रानी ! "

चंद्रकांत वेग से उस रथी पर झपट पड़े। प्रिया के शव को उठा लिया; उसे अपने बाहुपाश में गूँथ लिया। उस मृतक मुखड़े पर भी वही मुसकान थी। सूर्य्य के प्रकाश में वे हीरे की पिनें एक बार पुनः चमचमा उठीं।

चंद्रकांत उस रौरव लीला को अधिक नहीं देख सके; धड़ाम से गिर पड़े। लोगों ने शव को पुनः चिता में रख कर आग लगा दी। धाँय-धाँय चिता चेत गई।

जब होश हुआ चंद्रकांत ने देखा, बड़ी बड़ी विशाल लपटें उठ रही थीं।

आह चंद्रिका ! यह कैसी लीला ? मुझे छोड़ कर कहां जाती हो प्रिये ? क्या इसी को प्रेम कहते हैं ?

इसी समय उन रक्त वर्ण भीषण लपटों में चंद्रिका की आत्मा पुष्पमाला हाथ में लिये मुसकराती हुई दिखाई दी।

चंद्रकांत उत्सुक हृदय से देखने लगे, कुछ अस्पष्ट शब्दों में सुनाई दिया "नहीं प्रियतम ! मैं आपकी प्रतिक्षा में

पूर्ववत् तलफ़ती रहूँगी। जब आप पधारेंगे इसी वरमाला को पहना कर आपका आलिङ्गन करूँगी।"

२३

तीसरे दिन सब क्रियाकांड से निवृत्त होकर चंद्रकांत अकेले अपने कमरे में एक छोटीसी पोटली टेबल पर रख कर सामने रखे हुए आइने में अपना प्रतिबिम्ब देखने लगे।

रूखे बाल गुछलियां खाकर बिखर रहे थे; आँखें सुर्ख थीं; चेहरा पीला था; रह रह कर मुँह से दीर्घ श्वास निकल रही थी।

सामने टँगी हुई घड़ी 'टिक, टिक' आवाज़ से कमरे की निस्तब्धता को और भी गंभीर बना रही थी। घड़ी में देखा, दस बज रहे थे; पर अब तक दतौन करने तक का पता नहीं था।

उठो चन्द्रकांत, दतौन करो, किसकी मनुहार की प्रतिक्षा में बैठे हो ? दस बज गये, आज तीन दिन से तुमने कलेवा भी नहीं किया है। यह ज़िद ठीक नहीं है। भला सोचो, अब तुम्हें कौन मनाने आवेगा ?

बोलो—मौन क्यों हो ? किसकी स्मृति में तुम इतने दुःखी हो ? जिसके हाथों से इतने दिन तुमने कलेवा किया—क्या उसे याद कर रहे हो ? छिः कैसे पागल हो—उसकी नियुक्ति तुम्हारी सेवा में इतने ही समय के लिये थी। अब वह पुनः अपने स्थान पर चली गई है। क्या ऐसी मायावी प्रीत पर दुःखी होते हो ?

नहीं—नहीं वह मायावी प्रीति नहीं थी ! उस प्रेम-प्रतिमा को देख कर मेरा रोम रोम, वसन्त विकसित गुलाब की तरह खिल उठता था। उसके बिना मेरा संसार श्मशान होगया है।

चंद्रकांत विह्वल होकर कमरे में घूमने और विलाप करने लगे।

चार दिन पहले तुम यहां बैठ कर बाल सँवारती थी; 'इन्दू' को गोद में लिये मुसकुराते हुए कलेवा की थाली लेकर तुम आती और प्रीति मनुहार के साथ मुझे खिलाती

थी। आज भूखा प्यासा चंद्रकांत आंसू ढाल रहा है। ऐसे दुःख के समय में मुझसे रूठ कर तुम कहाँ जा छिपी हो—चंद्रे! एक बार उसी प्रेम से कलेवा का कोर देने फिर नहीं आवोगी प्रियतमे!

इसी समय टेबल पर रखी हुई पोटली को उठा कर चंद्रकांत पुनः बोले:—"किसे बुलाते हो पागल चंद्रकांत! जिसे जलाकर तुमने राख बना दिया। मेजिस्ट्रेट होकर जिस अभागिनी को तुम हिन्दूसमाज के फौजी कानून से नहीं बचा सके, उसकी स्मृति में अब रोने की कौनसी आवश्यकता रही है।

"हां, ठीक है, मेरी ही कायर नीति ने उस अबला की हत्या की है। अब इस अपराध का प्रायश्चित्त भी मैं ही करूँगा।"

फिर उस पोटली को खोलकर-चंद्रकांत पागलों की तरह नाचने लगे। यह मेरी चंद्रिका की राख है। उसके उन सुन्दर सलोने अधरों की यह राख है, जिन्हें मैं सुध-बुध भूलकर प्यार करता था। इसमें उसके उस नन्हे से दिल की राख है जिसे मैं बाहुपाश में गूँथ कर प्राणों से अधिक प्रिय समझता था।

इसी राख में मेरी प्राणेश्वरी छिपी है, इस राख के एक एक कण में उसकी अनुपम रूपराशी विद्यमान है। इसे प्यार करूँगा। जीवन के शेष दिन किसी पर्णकुटी में निवास करके हृदयेश्वरी की पवित्र स्मृति में बिताऊँगा।

चंद्रकांत केवल एक धोती और राख की पोटली लेकर घर से जाने लगे।

"कहां जाता है चंदू—मेरा लाल!" कहती हुई चंद्रकांत बाबू की मां शीघ्रता से दरवाज़े की तरफ झपटी।

"वहीं—जहाँ मेरी चंद्रिका गई है। अब इस घर में नहीं रहूँगा मां! मेरी चंद्रिका बिना मैं हरगिज़ अधिक नहीं जी सकूंगा—" कहते हुए चंद्रकान्त शीघ्रता से सीढ़ियाँ उतर गये।

ऐसी हज़ारों चंद्रिका ला दूँगी बेटा! ठहर जरा मेरी बात तो सुन?

पर वे नहीं ठहरे। तेजी से मकान के बाहर एक सड़क पर चल पड़े।

आगे चौराहे पर इन्दू को गोद में लिये हीरा तेजी से भागा आ रहा था। चन्द्रकांत ठहर गये और बोले:—"कहां जा रहा है हीरा?"

"मालिक। अपनी मालकिन के नाम का एक पत्र है!" पत्र देकर हीरा रोने लगा।

पत्र पर लिखा था—

"प्रिय दीदी चंद्रिका"

नाम पढ़कर चन्द्रकांत की आँखों से भी आँसू छलक आये। फिर पत्र खोल कर वे पढ़ने लगे।

पत्र रजनी का था। चन्द्रकांत पढ़ कर रो पड़े। फिर धीरज धर कर बोले:—"इस पत्र को पढ़कर अब किसे

सुनाऊँ हीरा ? ले इस पत्र में जो लिखा है उसे याद रखना। इस घर को छोड़कर कहीं न जाना। कभी कभी उस दुःखिया के अभागे 'कामिनी' की भी खबर लेते रहना। अनाथ 'इन्दू' की रक्षा का भार भी तेरेही सिर है।

यह कहते कहते चन्द्रकांत फूट फूट कर रोने लगे। फिर वह पत्र हीरा को देकर चन्द्रकांत शीघ्रता से चल दिये।

"आप हम अनाथों को अकेले छोड़ कर कहां जा रहे हो मालिक ?"—कहते हुए हीरा बेतहाश रो पड़ा।

'बाबू चाब—बाबू चाब—मत जाओ' कहते हुए इन्दू भी रोने लगी।

पर इन्दू के दुःखी बाबू साहब नहीं लौटे—'हीरा' बड़ी देर तक वहीं खड़ा हुवा देखता रहा।

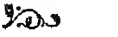

२४

उस घोर अंधकार में उन धधकती लपटों को देख कर एक वेगवती मोटर सहसा रुक गई।

'चल कर देखें इस निर्जन वन में यह अग्निशिखा क्यों कर प्रज्वलित हुई' कहती हुई एक अनुपम सुन्दरी युवती तेज रोशनी का टार्च चमचमाते हुए मोटर से उतरी।

'किसी ढोंगी साधू के तपस्या तापने का ढोंग होगा। इस तरह जंगल में बिना मतलब घुसना खतरे से खाली नहीं है।' कहते हुए वह युवक जो मोटर ड्रायव्हर की सीट पर बैठा था युवती के गले में गलबहियां डालते हुए उतर पड़ा।

युवती ने हँसी का ठहाका मारते हुए कहा:—"आप पुरुष होकर खतरे से खूब डरते हैं, तब ही तो उस रोज़, जब कि अपने पार्क में एक खरगोश घुस आया था आपको शेर के बच्चे का खतरा हुआ था।"

उत्तर नहीं मिला—युवक को लज्जित हुआ जानकर युवती अपनी दोनों बाहुओं को युवक के गले में डालकर एक बालिका की तरह झूल गई। फिर बोली:—"क्या नाराज़ होगये मेरे दिल? मैं भी तो इतनी मग़रूर आपही के पीछे बनी हूं। मुझे आपके साथ मज़ाक करने में बड़ा आनन्द मिलता है। फिर आप भी मेरी मज़ाक क्यों नहीं करते? क्या मैं सैकडों बार आपकी बलिष्ट भुजाओं में गूँथ कर लज्जित नहीं हुई हूँ।

"मानो प्रियतम! छोड़ दो—उफ़रे मरी—कुछ तो रहम करो—मुझे इतना न सताओ—पांव पड़ती हूँ—देखो, मेरी चूड़ियां कड़क गईं—कलाई से खून चू रहा है—अन्त में "हाय राम मरी"—कह कर जब मैं गर्दन झुकाकर आँखों से आँसू ढालने लगती—सिसकियाँ भरने लगती—तब कहीं आप मुझे छोड़ते। इतना सितम ढाहने पर भी आप मुझ जली पर नमक डालने के इरादे से कहते—एक मुसलिम हूर

की आँख में आँसू शोभा नहीं देते ! मुसलिम लड़कियां तो मोहब्बत के सितम सहने में बड़ी बहादुर होती हैं।

क्या इस तरह लज्जित करके मुझे सैंकड़ों बार आपने नहीं रुलाया है ? क्या मुस्लिम लड़की के हृदय नहीं होता ? क्या मैं मुस्लिम हूं इसीलिये आपके दिल में मेरे रोने पर भी रहम नहीं होता ?"

युवती की चंचल आँखों में बात ही बात में आँसू छलक आये। वह युवक की छाती से चिमटकर सिसकियाँ भरने लगी।

युवक अब अपनी हँसी को नहीं रोक सका। वह खिल-खिला कर हँस पड़ा। फिर युवती की आँखें अपने रुमाल से पोंछते हुए बोला—"यह अजीब रोना है ? खुद ही मज़ाक करो और खुद ही रोना शुरू करो !"

हिचकियाँ लेते हुए युवती ने कहा:—"तब आप मेरी ज़रा सी मज़ाक पर नाराज क्यों होगये ? हमें रुलाने में ही तो आपको सुख मिलता है न !"

युवती को बाहुपाश में आलिङ्गन करते हुए युवक ने प्रेमोन्मत्त होकर कहा:—"भोली प्रिये ! तुम्हारे इस नन्हे से दिल की कोमलता को मैं आज समझा हूँ। अब मैं तुम्हें कभी दुःख नहीं पहुचाऊंगा।"

युवती मुसकरा उठी; वह युवक की छाती से लिपट गई। फिर वे दोनों उस प्रकाश की तरफ़ बढ़ चले।

निकट जाकर देखा एक संन्यासी उस धधकती चिता

के पास बैठा हुआ चिन्तासागर में निमग्न है।

मुँह पर भस्मी पुती देखकर युवक ने हँसते हुए कहाः—"मैंने कहा था कोई ढोंगी साधू होगा। अब देख लो वह कौन है?"

संन्यासी युवक की आवाज़ सुनकर सहसा चौंक उठा। उसने एक तीव्र दृष्टि से युवक की तरफ़ देखा और फिर नीची नज़र करली।

संन्यासी को नाराज़ हुआ जानकर युवती ने नम्रता से पूछाः—"यह किसकी चिता है? आप इतने उदास क्यों हैं?"

संन्यासी के नेत्र डबडबा गये। वह कुछ नहीं बोला।

युवक ने युवती को खींचकर कहा—"यहां से चलो यह कोई पाखंडी दिखता है। अभी झूठ मूठ बात बनाकर कुछ मांगेगा।" वे दोनों जाने लगे। इसी समय साधू ने खड़े होकर उन्हें ठहरने का इशारा किया। फिर एक पोटली को युवक के हाथ में देते हुए साधू ने धीरे से कहाः—"जब तुम अत्यन्त मुसीबत में होवो तब इसे खोलकर देखना।"

युवक साधू की आवाज़ सुनकर चौंक उठा। साधू पुनः अपने स्थान पर जा बैठा।

इसी समय युवती ने हँसते हुए कहाः—"ताज्जुब किस बात का करते हो? जिसे आप भिखमंगा समझ रहे थे उसने आखिर आपको कुछ न कुछ देही डाला।"

युवक ने कुछ उत्तर नहीं दिया। युवती हाथ खींचकर

उसे मोटर की तरफ़ ले चली।

एक दीर्घ श्वास लेते हुए युवक ने कहा—"वह आवाज़ जो अभी उस संन्यासी के मुँह से सुनी, मेरे मित्र 'चंद्रकांत' सी थी। कितने दिनों से मैं अपने मित्र से भी नहीं मिला हूं। तुम्हें प्यार करने में मुझे अपने प्राणों से प्यारे मित्र का भी साथ छोड़ना पड़ा।"

"और मैंने क्या आपकी मोहब्बत में सब कुछ नहीं छोड़ दिया?"

युवती ने देखा युवक की आँखें आँसुओं से डबाडब थीं। मोटर चल पड़ी, फिर उन दोनों में कोई बात चीत नहीं हुई।

२५

स्वार्थ में कमी होते ही धीरे धीरे वह स्वार्थी प्रेम अस्ताचल की ओर बहने लगा।

वही नर्गिस थी—वही रजनीकांत थे—पर अब उनके हृदय वे नहीं रहे थे। रजनीकांत 'नर्गिस' की आँखों में वह पहले सा प्यार ढूँढ़ते थे; तो नर्गिस, रजनी बाबू की ज़ेब

में वह पहले-सा रुपयों का जोर शोर ढूँढ़ती थी।

किन्तु अब पैसा नहीं रहा था। जो कुछ था वह "नर्गिस" के नाम से बैंक में जमा था। पेट्रोल के बिना आज-कल मोटर की हवाख़ोरी बंद थी। बगीचे के बागवान की तीन महिने की तन्ख्वाह चढ़ चुकी थी; बाज़ार में सब तरफ से रजनी बाबू के सिर कर्ज़ चढ़ा हुआ था।

करीबन छः महिने से रजनी बाबू अपने घर नहीं गये थे। "नर्गिस" की मोहब्बत में उन्होंने कभी अपने दूध-मुँहे बच्चे "कामिनीकांत" को भी याद नहीं किया किन्तु कभी कभी रजनी के प्रेम की बातों को याद करके रजनीकांत विह्वल हो जाया करते थे। "वह मुझे खिलाये बिना कभी नहीं खाती थी। मेरे क्रोधित होने पर वह मेरे पाँवों में लोटकर माफी मांगती थी। रात रात भर मेरी इन्तज़ारी में वह बिना सोये बिता देती थी।

"क्या नर्गिस भी कभी मेरे लिये खाना छोड़ती है? मेरे क़दमों में गिरकर माफ़ी माँगती है?

"ऐसी सच्ची प्रेमिका को ठुकराकर मैंने नर्गिस को क्यों अपनाया? क्या रजनी में सुन्दरता नहीं थी? वह तो मुझे प्राणों से अधिक प्यार करती थी! फिर घर छोड़ते समय मैं उसे डूब कर मरने की बात कह आया था। कहीं वह मर गई तो न होगी! फिर कामिनी का क्या हुआ होगा!!

किन्तु दूसरेही क्षण विचारधारा पलट जाती और वे कहते "नहीं वह कुलटा थी; विश्वासघातिनी थी; वह अपने प्रेमी

के लिये अवश्य जीवित रही होगी। यदि उसे अपने दुष्कर्म पर पश्चात्ताप हुआ होता तो वह यहाँ क्यों न आकर पुनः मुझसे क्षमा माँगती ? नहीं अब मैं मृत्युपर्यन्त भी घर नहीं जाऊंगा।"

एक दिन संध्या के समय कर्ज़दारों के तक़ाज़ों से दुःखी होकर रजनीकान्त पैदल बंगले की तरफ लौट रहे थे कि उन्होंने एक शानदार मोटर में एक नौज़वान के साथ नर्गिस को बैठी हुई देखा। मोटर भी बंगले ही की तरफ आरही थी।

मोटर में बैठी हुई नर्गिस से रजनी बाबू की चार आँखें होगई पर मोटर नहीं रुकी।

रजनीकान्त अवाक से रह गये। "यह किसकी मोटर है वह नौज़वान कोन था। क्या नर्गिस के संसार में मुझसे भी अधिक प्रिय उसे और कोई है ? जिसके लिये मैंने अपना सर्वस्व लुटा दिया वह नर्गिस क्या मेरा इस तरह अपमान कर सकती है ?

" नहीं—वह नर्गिस नहीं थी। आज तक वह मुझे छोड़ कर अन्य किसी के साथ मोटर में नहीं बैठी है।"

इसी समय बाग के फाटक से उसी मोटर को वापस आते हुए रजनीकान्त ने देखा। उसमें वह नौज़वान, जो पहनाव से मुस्लिम दिखता था, शान के साथ बैठा था।

कलेजा थामकर रजनीकांत बाग में प्रविष्ट हुए। उन्हें विश्वास था कि नर्गिस उन्हें इस नवीन घटना की सफाई देने बंगले के फाटक पर खड़ी मिलेगी। उन्हें क्रोधित देखकर

उनके चरणों पर गिरेगी, उन्हें मनावेगी।

धीरे-धीरे बंगले का फाटक भी आगया, पर वहां नर्गिस नहीं थी। रजनीकांत भीतर गये; पर वहां भी वह नहीं थी।

इसी समय नर्गिस को स्नानागार में नहाते हुए रजनीकान्त ने देखा। उनके आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। एक भीषण संदेह ने रजनीबाबू का दुःखी हृदय मसोस दिया।

वे पास ही कुर्सी पर गंभीर चिन्ता में निमग्न होकर बैठ गये। किन्तु थोड़े ही समय में मुस्कुराती हुई सजीली शान से सजकर नर्गिस कमरे में प्रविष्ट हुई।

"मेरे दिल! यह उदासीनता कैसी? क्या किसी ने आपको कष्ट पहुंचाया है? अथवा इस दासी से कोई अपराध हुवा है? आज मैं अपने चचेरे भाई के साथ आपकी आज्ञा बिना सैर करने गई थी, क्या इससे तो आप नाराज़ नहीं हो गये हो?"

रजनीकांत कुछ नहीं बोले। नर्गिस अपनी दोनों भुजाओं को प्रियतम के गले में पुष्पहार की तरह पहना कर झूलगई। फिर रोने का अभिनय करती हुई उनकी छाती से चिमटकर बोली:—"आखिर मुझसे अपराध क्या हुवा है?"

रजनीकांत के सारे सन्देह क्षणभर में दूर होगये। वे नर्गिस को अपने बाहुपाश में गूँथते हुए अत्यंत प्रेमपूर्वक बोले:—नर्गिस! मैं कर्ज़दारों के तक़ाज़ों से अत्यंत दुःखी

हूं। क्या तुम मेरी मदद करोगी ?"

"यह सब कुछ तुम्हारा ही तो है—मैं भी आप ही की हूं। जिसे चाहो बेंचकर कर्ज़ चुकादो। इस छोटीसी बात के लिए आप इतने उदास क्यों होते हैं?

रजनीकांत के आनन्द का पारावार नहीं रहा। सचमुच नर्गिस ! तुम संसार की सारी विभूतियों से कहीं अधिक मूल्यवान् हो"—कहते हुये रजनीकांत ने एक बालिका की तरह नर्गिस को अपनी गोद में उठा लिया।

फिर मदिरा की मादक प्यालियां ढलने लगीं—आलिंगन की अल्हड़ अँगड़ाइयां और 'हाय—ओफ़ ! मरी राम !' की मधुर विस्कार से कमरे की गंभीर शांति छिन्न-विछिन्न होगई।

रात्रि का प्रथम प्रहर—"नहीं, आज जी भरकर पिलाऊंगी क्या मेरी कसम नहीं मानोगे ?—बस, यह आखिरी है, पीलो प्रियतम ! नहीं—नहीं मेरा गला सूख रहा है—दम घुट रहा है-सर चक्कर खा रहा है-मान जा नर्गिस !" आदि बातों में बीता। दोनों सो रहे थे पर किसी की आँखों में नींद नहीं थी।

रात्रि के बारह बजे होंगे, सहसा किसी ने धीरे से किंवाड़ खटखटाया। 'नर्गिस' ने चौंककर आँखें खोलदीं। फिर रजनीकांत के बाहुपाश से धीरे-धीरे निकल कर वह फाटक की तरफ दबे पांव बढ़ चली।

किंतु रजनीकांत की भी आंखें खुल चुकी थीं। किवाड़ खोलते ही मेहमूद ने प्रवेश किया। उसने घबराई ज़बान से कहा

"वे आरहे हैं !"

नर्गिस ने भय से कांपते हुए कहा:—"मैंने 'आज' आने से उन्हें मना कर दिया था। फिर क्यों आयें ? कह दो उन्हें चले जावें।"

"क्या दस हज़ार पर पानी फेरना चाहती हो नर्गिस ?

नर्गिस:—"नहीं महमूद में चाहती हूँ पहले इसका मकान और बची हुई ज़ायदाद बिकवाकर रुपया वसूल करलूं फिर ये दस हज़ार तो अपने हैं ही।"

महमूद:—रजनीकांत मूर्ख है; जिस तरह आज तुमने उसे उल्लू बनाया उसी तरह कभी फिर बना लेना। जल्दी चलो बाहर मोटर खड़ी है।

नर्गिस:—आज बहुत मुश्किल से उनके संदेह को मैं मिटा सकी हूं। इसलिये मोटर को तुरंत लौटा दो और उन्हें दो दिनके बाद मुझसे मिलने की सूचना देदो।

महमूद:—क्यों डरती है नर्गिस ! जिस बेवकूफ़ की सती-सावित्री स्त्री को मैंने क्षणभर में कुलटा सिद्ध कर दिया, उसे क्या तुझसी चतुर सुंदरी स्त्री बेवकूफ नहीं बना सकेगी ?

जागृत रजनीकांत यह आखरी बात सुनकर क्रोध और दुःख से पागल हो उठे। "आह—'रजनी' तू जीवित रहना। अपने दुराचारी पति को अपने पवित्र पावों की ठोकर लगाने के लिये तो जीवित रहना।" कहते हुए मन ही मन आँसू ढालने लगे।

इसी समय एक सुसलिम युवक ने शीघ्रता से कमरे में घुसकर नर्गिस का हाथ पकड़ लिया।

नर्गिस:—ठहरो नवाब साहब, मैं आपको कह चुकी थी, आज नहीं आ सकूंगी; फिर.....

"फिर बिर कुछ नहीं—तुम किसे नवाब कहती हो मेरी दिलरुबा! मैं तो इन कदमोंका गुलाम हूं"— कहते हुए उस नवाबज़ादे ने नर्गिस को बलपूर्वक अपनी गोद में उठाली।

भयभीत होकर नर्गिस बोली :—धीरे बोलिये, कहीं वह जग न जायँ! विश्वास रखिये, सिर्फ आज के लिए मुझे माफ़ी दीजिये। कल तो मैं आप ही की होकर रहूंगी प्यारे!

"दस हज़ार तुम्हें देकर भी क्या इस तरह डरते हुए तुम्हारे पास मुझे आना होगा? मैं कहता हूं सिर्फ एक घंटे में तुम्हें वापिस लौटा दूंगा। मेरी सजी हुई पुष्पशय्या को ज़हन्नुम न बनाओ नर्गिस!"

नर्गिस शीघ्रता से कमरे के बाहर होगई। बाहर मोटर खड़ी थी। जिसमें वे सब बैठकर रवाना होगए।

रजनीकांत भी उस घोर अँधियारी रात्रि में पागल की तरह अपने घर की तरफ़ झपट पड़े।

"हां अब रजनी मिलेगी। मैं उसके कदमों में गिरूँगा, उसके उन पवित्र चरणों को अपने प्रायश्चित्त के आंसूओं से धो डूँगा! वह देवात्मा है। मुझ पतित को अवश्य हृदय से लगा लेगी।"

"फिर वही हमेशा-सा सुमनोहर प्रभात होगा—रजनी मुसकराती हुई कलेवा की तश्तरी लेकर आवेगी। फिर वही संध्या होगी; रजनी जूही का पुष्पहार पहनावेगी।"

इसी विचार-धारा में बहते हुये रजनीकांत अपने मकान के सन्मुख आकर ही रुके। दरवाज़े पर बाहर सांकल चढ़ी देख कर उनका माथा ठनका।

"उस दिन पुलिस के भय से भाग कर जब मैं आया था तब यहां से मैंने प्रियतमा को पुकारा था। आज भी यहीं से पुकारूँ। वह बिजली की तरह दौड़ कर मुझे अवश्य गले से लगा लेगी।"

'रजनी—रजनी' कहते हुए सांकल खोल कर रजनीकांत शीघ्रता से ऊपर चढ़ गये। किंतु रजनी नहीं बोली। 'शायद वह सोई हुई होगी।'

ऊपर भी सांकल लगी थी। उसे भी खोलते हुए—'रजनी—रजनी'—रजनीकांत ने पुकारा।

किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। रजनीकान्त ने दियासलाई ज़ला कर एक बार खूब ज़ोर से पुकारा—'रजनी'!

उस क्षीण प्रकाश में कमरे के वीभत्स दृश्य को देख कर रजनीकांत चीख उठे।

"हा, रजनी! मेरे हृदयमन्दिर की रानी! मेरे आनन्दभवन को उजड़ श्मशान बनाकर तुम कहां जा बसी हो—प्रियतमे!", कहते हुए उस घोर अंधकार में पछाड़ खाकर रजनीकांत गिर पड़े।

रात्रि की बाकी घड़ियां बेहोशी की तन्द्रा में बीतीं। जब होश हुआ आँगन में मन्द मन्द प्रकाश पसर रहा था। रजनीकांत सब तरफ के दरवाज़े खोलकर ऊजड़ गृह-मन्दिर की करुण झांकी देखने लगे।

वे पुष्प-लतायें जिन्हें रजनी प्रातःकाल में पानी से सींचती थी सूख कर उनकी पत्तियां आँगन में खड़खड़ा रही थीं। जाले, कोले और मकड़ियों ने जगह जगह घर बना रखे थे। रसोई घर में जहां रजनी बैठ कर भोजन बनाती थी; चूहों ने बड़े बड़े बिल बना दिये थे। आटा, दाल आदि खाद्य पदार्थ रसोई घर में बिखर रहे थे।

रजनीकांत आँसू बहा कर घर का कोना कोना देखने लगे। फिर रजनी के आनन्दभवन का ताला खोलने लगे। जहाँ द्वार पर रजनी ने चॉक से लिख दिया था—'इस कमरे में प्रवेश करने का अधिकार स्वामी की नव प्रियतमा को है।' "आह प्राणेश्वरी! मेरी उदारहृदया हृदयेश्वरी! तुम्हें कहाँ ढूँढूँ ढूँढूँ!!"

रजनीकांत ने कमरे के किंवाड़ खोल कर वह तसवीर देखी, जिसे घर से विदा होते समय पुष्पहारों से रजनी मढ़ गई थी। फिर वह कपड़े और ज़ेवरों की पेटी देखी, जिसे वह देवी स्वामी की नव प्रियतमा को भेंट कर गई थी।

रजनीकांत ने दोनों हाथों से सिर पीट लिया। फिर बाहर आकर टेबल पर रखे हुए पत्र को पढ़ने लगे।

"हा प्राणेश्वरी ! मैंने बड़ा भीषण विश्वासघात किया है, अब इसका प्रायश्चित करूँगा।"

रजनीकांत उस मकान को खुला छोड़ कर पागल की तरह मकान से निकल पड़े। इसी समय उन्हें खयाल आया उस पोटली का, जो उस रात्रि में चिता के सम्मुख साधू ने दी थी और कहा था घोर मुसीबत के समय इसे खोलना।

रजनीकांत ने जेब से निकाल कर पोटली खोली—उसमें रजनी के कानों के 'इयररिंग्ज' निकले।

तो क्या वही मेरी हृदयेश्वरी की चिता थी, जिस पर मुझ पाषाण हृदय ने एक भी आँसू नहीं बहाया ?

"क्षमा करना—प्रिये ! आज सच्चा मातम मनाने आता हूँ। उस चिता की धूलि को आँसुओं से तर कर दूँगा।"

इसी समय 'कामिनी' को गोद में लिये पड़ोसिन दौड़ती हुई आई।

वह अबोध बालक पिता की छाती से चिमट गया किंतु वे एक क्षण भी वहां नहीं ठहरे। कामिनी को गोद में लेकर अपने मित्र चन्द्रकांत बाबू के घर की तरफ दौड़ पड़े।

मकान के दरवाजे पर हीरा खड़ा था। वह रजनीकांत बाबू को इस दशा में देख कर ठिठक गया।

"हीरा ! कहां है भाभी ? कहां हैं भैय्या ? आज उनसे अन्तिम भेंट करने आया हूँ।'

"भाभी ईश्वर के घर गई। भय्या का कुछ पता नहीं। आप भेंट किससे करेंगे ?"—कहते हुए हीरा फूट फूट कर

रोने लगा।

किंतु इसी समय आँखें पोंछ कर वह पुनः बोला—"आप जल्दी यहां से भागिये; पुलिस आपको ढूँढ़ रही है; आज रात को 'नार्गिस' नाम की औरत का खून हुआ है। अभी अभी पुलिसवाले इधर से भागते हुए गये हैं।

'कामिनी' को हीरा की गोद में देकर रजनीकांत शीघ्रता से चले गये।

क्या रजनीकांत मौत के डर से भाग रहे हैं? नहीं, उन्हें मरने के पहले अपनी प्राणप्यारी की चिता-भूमि पर मातम मनाना है।

कई घंटे तक दौड़ने के बाद रजनीकांत हाँफते हुए उसी स्थान पर पहुँचे। पर अब वहांपर न तो वह संन्यासी ही था और न चिता की राख ही।

रजनीकांत सिर झुका कर उस पुण्यमयी भूमि पर बैठ गये; और जी भर रोये; फिर एक चुटकी धूल मस्तक पर चढ़ा कर, उस बीहड़ जंगल में घुस गये।

भाग्य से उसी कुए पर; जिसमें डूब कर एक दिन रजनी ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की थी; पहुँच कर रजनीकांत रुक गये।

"आह! रजनी! एक दिन इस हत्यारे स्वामी की आज्ञा से किसी जलाशय में डूब कर तुम मरी थीं, उसी तरह आज मैं भी इस कुए में डूब कर उस पाप का प्रायश्चित्त करूँगा।

मरने के पहले यह अभागा रजनीकांत हाथ जोड़ कर अपने अगणित दुराचारों के लिए तुमसे क्षमा चाहता है। उदार प्रियतमे! मुझे क्षमा करना। हाय मैं अभागा तुम्हें इस जीवन में एक क्षण भी सुखी नहीं कर सका। क्षमा करना इस पापात्मा को। मरने से पहले एक बार दर्शन दो प्रिये!"

इसी समय सहसा रजनी की आत्मा दिखाई दी। रजनी मुसकरा रही थी।

रजनीकांत कूदने लगे। किन्तु रजनी की आत्मा ने दौड़ कर कहा:—"ठहरो! प्रियतम!!"

सहसा किसी ने रजनी बाबू का कंधा ज़ोर से पकड़ लिया।

रजनीकांत चौंक उठे। पीछे फिर कर देखा, तो संन्यासी-वेश में मित्र चंद्रकांत खड़े थे।

"आह! भाई साहब! मुझे मरने दीजिये!" कहते हुए रजनीकांत—मित्र की छाती से लिपट गये।

चंद्रकांत दुःखी मित्र को कंधे पर उठा कर अपने आश्रम को चल दिये।

२६

बारह साल बीत गये। दोनों मित्र आनन्द से आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने लगे। पर्णकुटी के आस-पास एक छोटी सी वाटिका घिरी हुई थी। पास ही में एक छोटा सा नाला कल-कल शब्द करता हुआ बह रहा था।

प्रातःकाल उठते ही रजनीकांत तो आस-पास की छोटी

जंगली बस्तियों में भिक्षा लेने चले जाते और चद्रकांत इसी नाले से पानी लाकर वाटिका की पुष्पलतिकाओं को सींचते थे। फिर स्नान करके पूजन-पाठ आदि से निवृत्त होकर मृगछाल बिछाकर पर्णकुटी के द्वार पर बैठ जाते।

इसी समय आसपास के गांवों से आये हुए दुःखी दर्दी गरीब किसान—"स्वामीजी की जय हो" कहते हुए अपने २ रोगों को बताकर औषधियाँ माँगते थे।

चन्द्रकांत ने इन दिनों आयुर्वेद का अच्छा अध्ययन किया था। वे प्रत्येक रोगी को खूब प्यार से देखते और फिर दवा का नुस्खा लिखते थे। थोड़े ही समय में चद्रकांत उस पहाड़ी बस्ती में प्रख्यात होगये। देहाती उन्हें 'चद्रकांत स्वामी' कहते थे।

कई वस्तुएँ वे लोग भेंट करने लाते; किन्तु चन्द्रकांत कुछ नहीं लेते। प्रत्युत्तर में वे अत्यन्त प्रेम से कहते:—"रजनी भय्या आप लोगों के घर भिक्षा लेने जाता है, वह सब कुछ आप ही लोगों से तो लेता है, फिर आप यहां अलग भेट देने का क्यों कष्ट उठाते हैं?"

इस उत्तर से वे लोग अत्यंत प्रसन्न होते। 'परोपकारी स्वामीजी कितने उदार हैं—ईश्वर इन्हें चिरायु रखे,' आदि आशीर्वाद देकर वे आनन्द से अपने घर जाते।

अब चन्द्रिका नहीं थी; रजनी भी नहीं थी; किन्तु उन देवांगनाओं की पवित्र स्मृतियां दोनों मित्रों के हृदमन्दिर में आज भी विद्यमान हैं।

भिक्षा लेकर कुटी को लौटते समय एक आम्रतरु की छाया में बैठकर रजनीकांत अक्सर अपनी प्रियतमा को याद किया करते थे। कहां गये रजनी, वे हमारे लाड़-दुलार के दिन—वे तुम्हारी मीठी मीठी मनुहारें—भोजन के समय पंखा झलना—थोड़ी सी देर में पहुंचने पर तुम्हारा प्रेमाश्रु बहाना इंतजारी करना! कहां गया कामिनी—कहां गया घर कहां गई वे आनन्ददायिनी सुख की मुलाकातें?

फिर उन इयररिंग्ज को निकाल कर रजनीकांत हृदय-विदारक विलाप करते "इन्हें पहनकर वह मुस्कराती हुई शर्मीली चितवन से झांकते हुए कामिनी को गोद में लेकर जब मेरे पास आती थी—कितनी भली प्रतीत होती थी! किन्तु मुझ अभागे ने सच्चे हृदय से उस सावित्री को कभी प्यार नहीं किया।"

इधर चन्द्रकांत मध्यरात्रि में कुटी से निकलकर नाले के तट पर जा बैठते और घंटों तक प्रियतमा की पवित्र स्मृति में आँसू ढालते रहते। कुटी में भय्या को न देखकर रजनीकांत ढूँढने निकल पड़ते।

"भय्या इतनी रात्री में आप यहां क्यों? यह आँसू कैसे? कड़ाके की सरदी पड़ रही है। चलो कुटी में इस तरह के हमारे रुदन का संसार में क्या मूल्य है?" कहते हुए मित्र को कुटी में ले जाते और सो रहते।

एक दिन रजनीकांत को भिक्षा लेकर जल्दी ही लौटते देख कर चद्रकांत ने आश्चर्य से पूछा:—"आज इतने शीघ्र

कैसे लौट आये ?"

मुस्कराते हुए रजनीकांत ने एक दैनिक समाचारपत्र भय्या के हाथ में देते हुए कहा:—"इसे पढ़िये।"

पत्र के पहलेही कॉलम के हेडिंग में लिखा था—

"हीरासिंह की शानदार जीत—मेहमूद की कुल मिल्कियत पर सच्चे वारिस कामिनीकांत का अधिकार। मैजिस्ट्रेट चन्द्रकांत की सुपुत्री 'इन्दुबाला' से कामिनीकान्त का प्रणयबंधन!"

फिर नीचे लिखा था:—'इस केस में हीरासिंह ने अत्यन्त चतुराई और परिश्रम से काम लिया है। पहले भी नर्गिस के खून वाले केस में हीरासिंह अपनी बुद्धि का सुन्दर परिचय दे चुका है। वरना रजनीकांत को खूनी के कलंक से बरी करके नर्गिस के शौहर खूनी मौलवी को कालेपानी की सजा दिलवा देना आसान काम नहीं था।

इधर आज बालिका 'इन्दुबाला' से 'कामिनीकांत' का विवाह समाचार सुनकर हमें और भी प्रसन्नता हुई है। इन्दूबाला ने अपने देश के लिये जो आत्म बलिदान किया है वह किसी से छिपा नहीं है। विवाह अत्यंन्त सादगी से होगा। प्रायः सभी वस्तुएँ स्वदेशी ही काम में लाई जावेंगी यह जान कर हमारे आनन्द का आज पारावार नहीं है। ईश्वर इन्दूबाला को अखंड सौभाग्यवती रखें।

"X. Y. Z. सम्पादक"

पढ़ कर चन्द्रकान्त आनन्द से फूले नहीं समाये।

हीरा ने अपनी अपूर्व स्वामीभक्ति से हमारा मुख उज्वल कर दिया है। उसे अशीर्वाद देने और उस पवित्र प्रणय की झांकी देखने एक बार पुनः हमें अपने गांव चलना होगा।

चन्द्रकांत भोजनादि से निवृत्त होकर शीघ्रता से मित्र सहित चल दिये। संध्या के कुछ पहिले शहर में पहुंचने पर मालूम हुआ, शादी 'इन्दुबाला पार्क' में हो रही है। चूँकि 'मेहमूद पार्क' का नाम बदल कर अब 'इन्दुबाला पार्क' होगया था। ठीक समय पर गेरुआ वस्त्र पहने दोनों मित्रो ने भीड़ को चीरते हुए प्रवेश किया।

हीरा जो एक शानदार पोशाक में सजा हुआ था देखते ही—ओहो! मेरे मालिक! पधारिये स्वामिन्! कहते हुए मस्तक नवाकर चरणों में गिर पड़ा।

फिर उठ कर दुलहिन 'इन्दुबाला' से प्रेम गद्गद् स्वर में कहा:—"आपके पूज्य पितृदेव पधारे हैं।"

शुद्ध खादी की बेलदार मोतिया साड़ी को सँवारते हुए—शर्मीली चितवन से अग्रसर होकर—'इन्दूबाला ने पिता के चरण छुए। चन्द्रकांत ने मस्तक पर प्रेमसूचक हाथ फिरा कर आशीर्वाद दिया। इसी तरह दुलहे ने भी चरण छुए।

फिर रजनीकांत का परिचय कराते हुए हीरा ने कहा:—"इन्दू! ये तुम्हारे चाचा और श्वसुर दोनों हैं। कामिनी! ये तुम्हारे पिता हैं।" दोनों वर वधूने एक साथ ही रजनीकांत के चरण छुए उन्होंने भी अत्यन्त प्रेम से

आशीर्वाद दिया।

वरमाला पहनाने के बाद अत्यंत सादगी से विवाह समारोह समाप्त हुआ।

दोनों को प्रणय-सूत्र में बांधते हुए चंद्रकांत ने दो पुष्प मालायें जिन्हें वह आते समय अपने हाथों से गूँथ कर लाये थे, वर वधू को पहना दी।

इसी समय कानों के इयररिंग्ज़ इन्दुबाला को देते हुए रजनीकांत बोले:—"यह भेंट तुम्हारी सास की तरफ़ से है, जिसे तुमने नहीं देखा है, पर वह तुम्हें अत्यन्त प्यार करती थी। तुम्हें दुलहिन देखने की उत्कट इच्छा वह मरने तक भी नहीं भूली थी। यह उसी तुम्हारी प्यारी सास की पवित्र स्मृति है, इसे खूब सम्हाल कर रखना।

धीरे धीरे मेहमान और सारे दर्शक चले गये। चंद्रकांत भी जाने लगे। किन्तु! इन्दुबाला ने आँखों में आँसू भर कर कहा:—"एक बार घर पधारिये। वृद्ध दादी आपका नाम लेकर दिन रात रोया करती हैं। फिर हम बालकों को छोड़ कर आप कहां जाते हो प्यारे पिता?"

चंद्रकांत ने गंभीरता पूर्वक उत्तर दिया:—"अपनी दादी से मेरा प्रणाम कहना उनका कुशल-क्षेम पूछना। मैं घर में चल कर अब क्या करूँगा? मुझे देखकर जो मुखड़ा हँसी की चौकड़ियाँ भरता था, जिसके ओठोंपर आठों पहर प्रियतम के पवित्र प्रेम की रट लगी रहती थी—उस भोले मुखड़े को दुर्दैव ने असमय में नष्ट कर डाला! अभी

तू बालिका है, मेरे हृदय के मर्म को नहीं समझ सकती। तेरी भोली भाली माँ की अमानुषिक हत्या का हृदयविदारक दृश्य तुझे याद नहीं होगा। उसका पशुओं की तरह वध हुआ है। उस दुखिया के रक्त की एक एक निरपराध बूंद को हिन्दू समाज ने विकट तांडव-नृत्य के साथ भक्षण किया है। उस मुखड़े के भोलेपन को तूने नहीं देखा है। उसके अनुपम सौंदर्य्य की तुझे पूर्ण स्मृति नहीं है। वह पूर्णिमा के चाँद से अधिक सुन्दर और बसन्त के गुलाब से भी अधिक मधुर थी। मैंने उसे जीवन में अनंत हृदयों से प्यार किया था; फिर शव को अग्निसंस्कार के एक क्षण पूर्व तक प्यार किया।"

झोली से राख की पोटली निकाल कर चंद्रकांत फिर बोले—"और अब इस राख को प्यार करता हूँ।"

"इन्दू! यह तेरी उसी प्यारी माँ की राख है, जिसने मरने के अन्तिम क्षण तक तुझे अपनी छाति से अलग नहीं किया था। बस, इसी राख की पवित्र स्मृति में जीवन के शेष दिन बिता दूँगा। इस समय यदि वह होती तो तुझे देखकर कितनी सुखी.....!"

चंद्रकांत का गला भर आया—वे अधिक नहीं बोल सके। धीरे धीरे वे चले गये।

"पिता! पिता!! हम बालकों को छोड़कर कहां जाते हो!" इन्दू पछाड़ खाकर ज़मीन पर गिर पड़ी। हीरा भी रो पड़ा पर दुःखी चंद्रकांत फिर नहीं लौटे। रजनीकांत भी मित्र के साथ ही चल दिये।

उपसंहार

"आज मेरा चंदू आया है। वह बारा में ठहरा है। मैं उसके चरणों में गिरकर आज उससे माफ़ी माँगूँगी"— कहती हुई चंद्रकांत बाबू की बुढ़िया माँ तेज़ी से भागी जा रही थी।

कई जगह ठोकर खाकर वह गिर पड़ी थी। भागते

भागते दम फूल गया था—पसीने से शराबोर होकर वह बाग में घुसी। आँखें फाड़ फाड़कर वह चारों तरफ देखने लगी—पर वहां कोई नहीं था।

"चंदू! चंदू!! तू कहां है पुत्र! मैं अभागिनी तेरे दर्शन करने आई हूँ—अपने अनन्त अपराधों की अन्तिम क्षमा मांगने आई हूँ।"

बिखरे हुए पुष्पों को ज़मीन से उठाकर बुढ़िया माँ रोने लगी। 'मेरा चंदू आया—तब ये पुष्प देवताओं ने बरसाये होंगे!'

कुछ-कुछ अँधेरा होने लगा था—बुढ़िया ने बाग़ का कोना कोना ढूँढा, पर पुत्र नहीं मिला। निराश होकर—"हा चंदू! मेरे लाल!! तू मुझसे इतना रूठ गया है, कि इतने साल बाद आकर भी मुझसे नहीं मिला?" कहते हुये ज़मीन पर गिर पड़ी।

फिर कहने लगी:—"हाँ ठीक ही तो है गैंने अपनी भोली बहू का खून किया है मैं खूनी हूं। चंदू मेरा देवात्मा है। अपने प्रिय पुत्र की वह सुखी गृहस्थी मैंनेही तो नष्ट की है। मेरी इर्शालु आँखें, बहू के वैभव को नहीं देख सकीं, वह अपूर्व सुंदरी है, पति भक्ता है, चंदू को बहुत प्रिय है धीरे धीरे वह इन गुणों से एक दिन अपने पति के हृदय पर, अधिकार जमालेगी और तब इस घर में मेरा शासन न चल सकेगा। घर में एक नोकरानी की तरह रहकर मुझे जीवन बिताना होगा। ऐसे स्वार्थी विचारों के वशीभूत

होकर मैंने उस गृहलक्ष्मी को कभी सुख से सोने तक नहीं दिया। चंदू के बढ़ते हुये पत्नी-प्रेम को मैं अपनी ज्वालामुखी आँखों से देखती रही—पग पग पर फूलों सी सुकुमार बहू का भीषण अपमान करती रही ! अंत में उस प्रिय खिलौने को जिसे चंदू अनंत हृदयों से प्यार करता था, मुझ पिशाचनी ने नष्ट कर दिया—अपने लाल के दिल को तोड़ दिया। किंतु, उस महान देवात्मा मातृभक्त पुत्र ने आँसू बहाने के सिवाय मां को कुछ नहीं कहा !हा—चंदू—हा मेरे पुण्यात्मा बेटा, इस जीवन में अब तुम्हारे दर्शन भी क्या न होंगे—कहते कहते बुढ़िया भयानक मनोव्यथा से व्याकुल हो उठी। आँसू बहाते हुए फिर बोली—अनंत बार नहीं केवल एकही बार देखा चाहती हूं वह प्यारा मुखड़ा—जिसे, मुस्कराते हुये तुम मातृआज्ञा के आगे शर्म से झुका लिया करते थे। फिर सुनना चाहती हूं, अगणित बार नहीं केवल एकही बार वे प्यारी बोलियां, जिन्हें बोलकर तुम इस पापिनी मां के दिल को प्रभात के कमल की तरह खिला दिया करते थे। आवो पुत्र चंदू—ऐसे मगरूर न बनो—देखो संध्या हो रही है। इसी समय तो अदालत से लौट कर तुम आया करते थे। किंतु आज दस साल से कहीं अधिक बीत गये पर तुम अदालत ही से वापस न लोटे; क्या किसी बड़े मुकदमे की वजह से तुम्हें फुरसत नहीं है—अथवा तुमने मुझसे रुष्ट होकर अदालत के पासही कोई अन्य बंगला किराये से ले लिया है ? नहीं पुत्र—ऐसे निर्दय न बनो—तुम्हारी मां तुम्हारी

याद में कैसी तूरती है—वह पागल होगई है, आखिर !
अब वह न जी सकेगी। इसलिये मैं कहती हूँ एक बार उस
तरह अदालत से पुनः आवो। मां आप क्या करती हो—
आप इतनी दुर्बल क्यों होगई हो आदि स्नेहभरी बातें पूछो।
फिर छतपर बैठकर निर्मल चांदनी में हारमोनियम बजाओ,
मैं तुम्हारे रसभरे कंठकी मधुर अलाप सुनूं और सुखी होऊं।

बोलो—बोलो चंदू तुम मेरी इस अंतिम प्रार्थना को
मानोगे या नहीं ! किसी भी दुखान्त के अंतिम दृश्यकांड में
सबही सुख सम्मिलित होते हैं फिर क्या तुमही नहीं आओगे ?"

शांति का अंधकार घबराने लगा था—बुढ़िया मां का
पागल प्रलाप उस अटूट शांति में प्रतिध्वनित होकर विलीन
होगया ! किसीने कोई जवाब नहीं दिया।

"पुत्र ! नहीं बोलते—ठीक है मैं अब समझी—हां
सचमुच तुम नहीं आवोगे ! मुझ राक्षसी का मुँह देखकर भला
तुम पुण्यात्मा पाप के भागी क्यों बनोगे ?"

"अच्छा तो—इस पापी शरीर को रखकर अब क्या
करूंगी" कहते हुए बुढ़िया ने एक पत्थर उठाकर बड़े वेगसे
अपने मस्तक पर पटक लिया। रक्त का झरना फूट निकला !
सारा शरीर लोहू में लथपथ होगया—हाथ भी लाल
होगये वह उसी हालत में खुले सिर पागल की तरह नाचने
लगी और कहने लगीः—मैं मरूंगी, किन्तु अभी नहीं—क्यों
कि मुझे अपने पुण्यात्मा पुत्र के नाम की अनंत मालायें
जपना होगी ! स्त्री हत्या के घोर पाप का कठोर प्रायश्चित